ISSN : 2321-3922
अप्रैल– 2021
RNI-BIHHIN05394
वर्ष – 6 अंक–24

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.susambhavya.com

सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका

सुसंभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

अप्रैल–जून– 2021

प्रकाशन : 27 जनवरी 2013

RNI No. : BIHHIN05394/2015
ISSN - 2321-3922
वर्ष–6, अंक–24

संस्थापक–सह–प्रधान संपादक
श्री दयानन्द जायसवाल

संरक्षक
डॉ. विजय कुमार सिंह

सम्पादक मंडल
डॉ. गिरिजा शंकर मोदी
अश्विनी प्रजावंशी

संस्थापक सदस्य
श्रीमती छाया पाण्डेय
श्रीमती संयुक्ता गुप्ता

स्वत्वाधिकारी व प्रकाशक : श्री दयानन्द जायसवाल
संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं समस्त
व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक ।
रचनाओं के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र
भागलपुर।

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303
वेबसाईट : www.susambhavya.com
ई–मेल : dnj.sambhavya@gmail.com

RNI No. : BIHHIN05394/2015
ISSN - 2321-3922

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

वेबसाईट : www.susambhavya.com

आमंत्रण

'सुसंभाव्य' अंतर्राष्ट्रीय स्तर की हिंदी त्रैमासिक पत्रिका है जिसे वर्तमान समय में विश्व के विभिन्न देशों के पाठक सहित भारत के लगभग सभी शहरों के सहृदयों का स्नेह प्राप्त हो रहा है।

इसका ई–संस्करण विश्वग्राम के सभी सुधी पाठकों एवं स्नेहीजन के लिए www.susambhavya.com पर सहजता के साथ सुलभ है। मुद्रित संस्करण यथासंभव रचनाकारों, हिंदी के लिए समर्पित संस्था और संस्थानों को उपलब्ध कराया जाता है।

श्रेष्ठ चिंतन सहज–सरल अभिव्यक्ति के माध्यम से जब कोई व्यक्ति सार्वभौम होकर जन–गण में व्याप्त हो जाता है तब वह व्यक्ति से व्यक्तित्व और व्यक्तित्व से संस्थान बन जाता है, ऐसे महान विभूतियों से आग्रह है कि जुलाई–अक्टूबर– 2021 अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रचनाएं अपने पत्राचार–पता के साथ, कोरियर या डाक से संपादक के पते पर भेजें।

आइये सब मिलकर सामाजिक सरोकार से संबंधित सार्वभौम, सार्वजनीन एवं श्रेष्ठ साहित्य के माध्यम से धर्म–मज़हब, जाति, लिंग, वर्ण, वर्ग और नस्ल–भेद की दीवार हटा दें और सिर्फ इंसान बनें तथा उत्तम ज्ञान एवं श्रेष्ठ आचरण से स्वयं का परिष्कार कर विश्वग्राम का सौभाग्य बनें।

संपादक
सुसंभाव्य हिन्दी त्रैमासिक
E-mail : dnj.sambhavya@gmail.com
Mob.: 9931240303

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303

नोट : कृपया अपनी रचनाएँ kurtidev -010 में ही ई मेल से भेजें अन्यथा स्वीकृत नहीं होगी।

अनुक्रम

पुरोवाक्	संस्थापक की कलम से	दयानन्द जायसवाल	05
समीक्षा	वक्त के करवटों की उदास सिंफनी	प्रताप दीक्षित	06
कविता	कोरोना काल में घर लौटते हुए, रंगमंच	अर्चना वर्मा	07
समीक्षा	मानव मूल्यों को स्थापित करती लघुकथाएँ	दीपक गिरकर	08
समीक्षा	रचनात्मक विधाएँ दायरों में नहीं बँधती	सूर्यकान्त नागर	09
कविता	पुनर्वास, दोयम	संजय कुमार सिंह, सूर्य प्रकाश मिश्र	10
समीक्षा	आधा आदमी : आदमी के अस्तित्व को अभिव्यक्त करती कविताएँ	डॉ. निलोत्पल रमेश	11
गज़ल्	वो तुम्हें झूठ पहले रो कर कहेंगे	सलिल सरोज	12
समीक्षा	कुरुक्षेत्रा गाथा : व्यक्ति की आंतरिक विकास यात्राा	डॉ. अरुण कुमार वर्मा	13
समीक्षा	दिनकर के काव्य में सर्प–बिम्ब	डॉ. चुम्मन प्रसाद	15
कविता	मायूस क्यों होता है, भ्रम	समीर उपाध्याय, गीता गुप्ता मन	17
समीक्षा	मुक्तछंद के प्रवर्तक महाकवि : निराला	डॉ. नलिनी श्रीवास्तव	18
कविताएं	गुड़िया का मुखड़ा उदास है, बेटी, खुद सा रहना	गरिमा सक्सेना	20
समीक्षा	माखनलाल चतुर्वेदी की काव्य परम्परा	राजेन्द्र परदेशी	21
समीक्षा	संवेदनाओं को अभिव्यक्त करती कहानियाँ	डॉ. संजय चौहान	23
कविता	कस्तूरबा	मधुकर वनमाली	24
समीक्षा	मचान : उत्कृष्ट उपन्यास	कुलदीप शर्मा	25
आत्मकथ्य	जीवन जो तूफ़ानों झंझावातों से टकराता निरंतर गतिशील रहा	कमल किशोर गोयनका	27
आलेख	महिला सशक्तिकरण दशा और दिशा	डॉ. लाखाराम चौधरी	31
आलेख	बच्चन की मधुशाला में रहस्यवाद	भगवती प्रसाद द्विवेदी	35
व्यंग्य	उनकी पहली हवाई यात्राा	वीना सिंह	37
लघुकथा	मोबाईल का गुम होना और नींद का खोना	संजय वर्मा दृष्टि	38
निबंध	आस्था का वृक्ष	डॉ. आशा पुष्प	39
बालकथा	2 अक्टूबर पर बापू की सीख	नीरज त्यागी	40
कहानी	लम्हों ने खता की थी	मनोरंजन सहाय सक्सेना	41
कहानी	मैं तेरा शहर छोड़ जाऊँगा	डॉ. पूरन सिंह	45
लघुकथा	एक पीएच.डी डिग्री होल्डर की आत्मपीड़ा	अंजना कुमारी	48
कहानी	बुढ़ापे का बँटवारा	संदीप शर्मा	49
कहानी	सीट नम्बर 37 के सामने	डॉ. विनीता राहुरीकर	51

कहने को शेष

समेटता हूँ जितना अपने आपको
उतना ही गहन होता है रिक्त
चित्त की हिलती हैं जड़ें
मुरझाने लगते हैं फूल
पतझड़ का अब
कोई अन्त नहीं रहा
न कोई ओर–छोर
अपने उलझे धागे
समेटने में लगा हूँ
सूर्यास्त की लालिमा शेष है
जिस वसन्त को मैंने
धरती के कणों से बीना था
वह अब कभी नहीं लौटेगा
कितना विस्तृत विराट है
खुला सामने
फिर भी दिखता नहीं क्षितिज
बहुत–से पक्षियों को
ऊँची उडान के लिए
डैने खोलते देखा

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

पुरोवाक्

दयानन्द जायसवाल

संस्थापक की कलम से

हिन्दी साहित्य जगत में गद्य और पद्य साहित्य का एक ऐसा माध्यम है, जो सामान्यजन को सरलता से अपनी ओर आकर्षित करता है। इसे पढ़कर उसमें निहित उद्देश्य एवं मूल्यों को समझ सकता है। मनुष्य समाज का एक ऐसा जिज्ञासु और बुद्धिजीवी प्राणी है, जो अपनी जिज्ञासाओं की पूर्ति के लिए निरंतर अनुसंधान व खोज करता है। मनुष्य में यह प्रवृत्ति जन्म से ही विद्यमान होती है और उसमें जो विशिष्ट प्रकार के होते हैं, वो साहित्य में विद्यमान समाज के यथार्थ को लेकर चलते हैं। आदिकाल के वैदिक ग्रंथों व उपनिषदों से लेकर वर्तमान साहित्य के मनुष्य जीवन को सदैव ही प्रभावित किया है। एक अच्छा साहित्य मानव जीवन के उत्थान व चारित्रिक विकास में सदैव सहायक होता है। साहित्य के विकास की कहानी वास्तव में मानव सभ्यता के विकास की ही गाथा है। साहित्य के अभाव में व्यक्ति के व्यक्तित्व की कल्पना ही नहीं की जा सकती–

''साहित्य, संगीत, कलाविहीनः साक्षात् पशुः पुच्छ विषाणहीनः।'' साहित्य जीवन का पर्याय है तथा दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। साधारण तौर पर मनुष्य केवल अपने ही हित की बात सोचता है, परन्तु साहित्य का हितचिंतन विश्वकल्याण की भावना पर आधारित होता है। साहित्यकार समाज का प्राण होता है। वह तत्कालीन समाज की रीति–नीति, धर्म–कर्म और वातावरण से अपनी साहित्यिक रचना के लिए प्रेरणा ग्रहण करता है तथा लोकभावना का प्रतिनिधित्व करता है।

अतीत की साहित्यिक रचनाएँ भी आज संकटों को शिनाख्त करती हैं। ये हमें मनुष्य जिजीविषा की याद दिलाने के साथ–साथ नैतिक मूल्यों के ह्रास और मनुष्य अहंकार, अन्याय और नश्वरता से भी आगाह करती हैं। इतिहास गवाह है कि अपने–अपने समयों में चाहे कला हो या साहित्य, संगीत–तमाम रचनाओं ने विसंगतियों, गड़बड़ियों, सामाजिक द्वंद्वों के अलावा महामारियों की भयावहता को भी चित्रित की हैं। आज के कोरोना समय में जब अधिकांश लेखक विभिन्न भाषाओं में कवि, कथाकार खुद को अभिव्यक्त कर रहे हैं, तो डायरी, निबंध, नोट, लघुकथा, आख्यान और कविता लिखी जा रही है। प्रेम और यातना के मिले जुले संघर्ष की करुणा दास्तान हमारा साहित्य ही बचाए रखता है। आज कोरोना से हुई क्षति समस्त विश्व में विचारणीय विषय बन गई है। इससे आए आर्थिक संकट और मृत्युदर के आँकड़े भी चिंता में डालते हैं। इस अवधि में विश्व के जानमानस ने मानसिक यंत्रणा भोगी है। असुरक्षा और डर के वातावरण में साँस ली है। परन्तु एक सकारात्मकता सामने आई। लोग स्वास्थ्य और स्वच्छता के प्रति जागरूक हो गये। इस हकीकत को साहित्यिक रचनाधर्मिता से जुड़े लोगों ने भी बेहद करीब से पढ़ा–सुना देखा है। उन्होंने लॉकडाउन की अनिवार्यता और उससे उपजी प्रतिकूल परिस्थितियों की पीड़ा पर तीव्रमंथन किया है। स्वाभाविक तौर पर विनाशक कोरोना काल में मंथन से निकली सृजन की सुधा समाज के साहित्यप्रेमी को तृप्ति दे रही हैं। रचनाओं में आमलोगों का दर्द, व्यवस्था की विवशता, संस्कार के खिलाफ आक्रोश ये सभी पक्ष समाहित हैं। प्रवासियों की दशा और व्यवस्था की सोच पर सीधा प्रहार है। साहित्यकारों ने चिकित्सकों, स्वास्थ्य कर्मियों, सुरक्षाबलों, सफाईकर्मियों एवं औषधि व्यवसासियों के काम की प्रशंसा की। साहित्यिक जीवन से परे साहित्यकार का सामाजिक और राजनीतिक जीवन भी होता है, जिसकी छाया साहित्य पर किसी–न–किसी रूप में अवश्य पड़ती है। साहित्यकार का मुख्य ध्येय ही होता है–नये संदर्भों, नये अर्थों, नये मन्तव्यों एवं नये आयामों की खोज करना। इस प्रकार साहित्यकार मूल्यबोध जैसे–जैसे तलाश करता रहेगा, वैसे–वैसे वह नई रचनाओं की सर्जना करने में सफलसिद्ध होगा।

साहित्यकार को रचना और मूल्यों के सौंदर्य का विकासात्मक और विकासोन्मुख फलक पर निरीक्षण और परीक्षण अवश्य करना चाहिए। संप्रति कुछैक साहित्यकार के चिंतन–मनन की परिधि सिमटती जा रही है। उदारता के स्थान पर संकीर्णता तथा विस्तार के स्थान पर संकुचन की भावना देखी जा रही है। आज साहित्य में अस्तित्व संकट खड़ा हो गया है। मानव मूल्यों से कटकर आज एकाकीपन से घिरा हुआ अपने परिवेश और परिवार से भी कटता जा रहा है। रिश्ते सब खंडित होते जा रहे हैं। साहित्यकार अपनी व्यापक और विशाल संभावनाओं तथा बड़ी जटिल सीमाओं के बीच द्वंद्वात्मक स्थिति में आ गया है। ऐसे में इन्हें बौद्धिकता पर अतिरिक्त बल देकर शरीर, मन और आत्मा से साहित्य में सांस्कृतिक विचार, विश्वास, सहयोग, सद्भाव, सहनशीलता, सहिष्णुता आदि मूल्यों को पुनः स्थापित करने का प्रयास करना होगा। साहित्यिक अहंवादिता को त्यागकर विश्वग्राम के धरातल पर मूल्यपरक साहित्यसृजन करना होगा।

आधुनिकता और प्राचीन साहित्यिक परंपरा के बीच में आज साहित्य में समन्वयवादी प्रवृति जागृत करने की आवश्यकता है। सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों के समन्वय और सामंजस्य से भी साहित्यिक मूल्यों की सर्जना संभव हो सकती है, जो साहित्य और समाज के लिए उपयोगी सिद्ध होंगे।

'सुसंभाव्य' में एक समृद्ध साहित्यिक विमर्श की परंपरा रही है, जिसमें मूल्यों के प्रति आग्रह का भाव देखने को मिलता है। मनुष्यता के विकास में सांस्कृतिक चेतना मुखरित करनेवाले सुसंभाव्य के साहित्यकारों के प्रति आभार एवं शुभकामनाएँ।

समीक्षा

वक्त के करवटों की उदास सिंफनी

प्रताप दीक्षित
जानकीपुरम, लखनऊ
मो. 9956398603

संगीतप्रेमी, किशोरी आमोनकर 'सेहला रे....आ मिलि गाएँ' के आरोह के स्वरों के साथ जिस भावलोक की अनाम यात्रा में चले जाते हैं, उसकी मूर्छना राग भूपाली के थाट कल्याण के अवरोह 'अबकी मिलि बिछड़ न जाएँ' के साथ ही टूटती है। ठीक इसी प्रकार मृणाल पांडे का उपन्यास पाठकों को 'सेहला रे' संगीत के स्वर्णिम अतीत की यात्रा में ले जाता है। संगीत का वह रूप जहाँ यह साधना थी, व्यवसाय नहीं। साधक और श्रोता के बीच बाजार नहीं स्वर–शुचिता थी, जिसे गायक–कलाकार या उनके गुरु तय करते थे। लेखिका ने ध्वनियों के आलोक शब्दों के माध्यम से संगीत की इस दुनिया की उत्थान से अपवर्तन तक मर्मांतिका रची है। उपन्यास में एक ओर जीवन, जगत और समय में आए परिवर्तनों के बीच मनुष्य की जिजीविषा और संघर्ष है, दूसरी ओर दमकती रोशनी, विराट वैभव के प्रदर्शन के बीच मनुष्य की खो गई नैसर्गिक संवेदना की तलाश। अतीत और वर्तमान को, संगीत के संदर्भ में, देखने की एक खास नजर से उपन्यास के आख्यान बनता है।

आख्यान में परंपरा होती है कथावाचक और श्रोता की। व्यास, शुकदेव, काकभुशुण्डि की बाँची कथाएँ लिपिबद्ध किसी अन्य ने की है। उपन्यास की कथावस्तु समय के आख्यान में अपने समय की प्रख्यात गायिकाएँ हीराबाई, हुस्नाबाई, अंजलि से लेकर आमाल तक के कथा–सूत्रों को एकत्रित किया है उपन्यास की मुख्य पात्र डॉ. विद्या (प्रख्यात इंडोलॉजिस्ट) ने। जिन्हें सूत्रबद्ध कर एक लरी में परोने में, सूर–लय–ताल की यात्रा से गुजर, कथा के अंत तक पाठक उस उदासी भरे सुख के सहभागी बनते हैं, जिसे लेखिका ने सृजा है। कथा वास्तव में इन पात्रों के माध्यम से समय के साथ सुर–संगीत की रवायतों में आई तब्दीली के बाजार के प्रभाव से नए दौर में बदल गये समाज की है। कथा का प्रारंभ विद्या के उसके राधा दादा को लिखे पत्र से होता है, जिसमें उसने सांगीतिक थिएटर के इतिहास की अपनी महत्वाकांक्षी योजना, जिसपर वह खोजबीन का काम करती रही है, को पूरा करने के लिए मदद चाही है। उसके बड़े भाई संजीव का मित्र राधा प्रसाद अब बड़ा प्रकाशक बन चुका है। विद्या की माँ को संगीत का रसिक माहौल अपने परिवार से विरासत में मिला। परन्तु शादी के बाद गांधीवाद पति की संगीत के प्रति अनकही उपेक्षा से माँ ने उसे मन के अंदर किसी अंधेरे तहखाने में दफन कर दिया। 'तुम्हारे मायके वाली किस्म की महफिलें' के तीनों के अघोषित कर्फ्यू के बीच पाकिस्तान से आई बेगम रोशन साहिबा जैसे संगीतकारों को सुनने का मौका निकल ही आता। विद्या के संकल्प के पीछे उसके अवचेतन में कहीं माँ के सपने भी हैं।

कथा विकास के साथ कड़ी जुड़ती जाती हैं–संजीव कोलकाता के सुकुमार चाचा (सुकुमार बनर्जी), पुतुल दीदी और इनके माध्यम से तपिश साहब, अंतिम दिन काट रही अल्लारक्खी, उनकी बेटी हैदरी, अमाल, कितने जाने–अनजाने लोग, पुराने कागजात, चिट्ठियाँ, फोटोग्राफ, इलाहाबाद–अल्मोड़ा के चर्चों में पुराने रजिस्टर, दस्तावेज, पत्राचार, यात्राओं, मुलाकातों में सांगीतिक अतीत का जो दरवाजा खुलता है, उसके पीछे है मौसिकी की दुनिया के अविस्मरणीय चेहरे–अम्माजानी, हीराबाई, हुस्नाबाई, अंजनी बाई, जोहरा बेगम ऐसे कितने नाम, उनके साजों और तिलवाड़ा, झूमरा, विलंबित तीन ताल के खयाल, रसीली ठुमरी की तानों के साथ उस्ताद रज्जबअली साहब, बुन्दू अली, मोती पंडित आदि। कालिकानंद सिंघ जूदेव, कुँवर शार्दूल विक्रम सिंघ, कालीसाधन बनर्जी ऐसे संगीत रसिक न केवल इनके सरपरस्त थे, इस प्रकार से इन लोगों ने संगीत की विरासत को संरक्षण दिया, बनाए रखा। यह दुनिया फैली हुई थी, बनारस से रूहेलखंड की शेरवाली कोठी तक।

कथा प्रारंभ होती है उन्नीसवीं सदी के छठे दशक में दो खानदानी डेरेदार गवनहारियों, हुस्नाबाई और हीराबाई से। मसूरी में जंगलात मुहकमे के अधिकारी एडी हिवेट, पहाड़ में जन्मी बड़ी हुई गुलाब और हीरा के प्रेम त्रिकोण की कहानी लोकगीत बन चुकी थी। जिसे किसी समय सुकुमार बनर्जी ने रिकार्ड कर लिया था। पहाड़ की किन्नरों के वंशज कही जानेवाली जाति के लोग अपने संगीत से मुग्ध कर देते हैं। हिवेट साहब गुलाब के रूप और स्वर पर रीझकर उससे विवाह कर लिया। दुर्भाग्य से पहली संतान को जन्म देते हुए गुलाब चल बसी। इसके बाद हीराबाई से बाकायदा रानीखेत के चर्च में हिरुली के धर्मान्तरण करा विवाह कर लिया। हीरा विक्टोरिया मसीह बन गुलाब–हिवेट के पुत्र नथेनियल (नत्थू) की विमाता बन साहब की आलीशान कोठी में दाखिल हुई। हिवेट की हीरा से जन्मी बेटी एंजेलीना पर मुग्ध था। उसकी नीली आँखें हिवेट को अपनी माँ जैसी दीखती थीं। एंजेलीना करीब बारह साल की रही होगी, तब हिवेट जंगल में शिकार के दौरान गायब हो गये। उनकी क्षत–विक्षत लाश एक सप्ताह बाद मिली।

उपन्यास में भी हुस्नाबाई और हीराबाई की कला जैसे तैसे सिर्फ एक और पुश्त उनकी बेटियों, क्रमशः अल्लारक्खी और अंजलीबाई तक चल पाती है। हुस्नाबाई की परंपरा अल्लारक्खी के बाद चुक जाती है, भले ही अल्लारक्खी की बेटी और धेवती अमेरिका में बसकर संगीत से ही अपनी रोजी–रोटी चलाती हों, हीराबाई का तो वंश ही बिला जाता है अंजलीबाई के साथ।

संगीत के गुजिश्ता स्वर्णिम युग की खोज करता ये उपन्यास उस वक्त को केवल संगीत के संदर्भ में ही नहीं व्यापक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भी प्रस्तुत करता है।

मृणाल पांडे ने ये किताब लिखी तो उसमें एक से एक किस्सों के काफिले चल पड़े, गानेवालियों के रहन–सहन से लेकर मन–मिजाज तक। सबको मालूम होगा कि गानेवाले स्त्रियाँ राजघरानों से जुड़ी रही हैं। मोहर–अशर्फियाँ, गहने नहीं, हवेलियाँ और जायदाद उन्हें बख्शिश में मिली। उनकी एक जमात मध्यवर्ग का मनोरंजन करती रही। उनके हुनर को पेशा माना गया। असल गायिकी के इतिहास में आज भी बड़ी शोहरत वाली बेगम अख्तर, जानकी बाई, जद्दनबाई, गौहर खान का नाम बड़ी इज्जत से लिया जाता है।

हर छोटे–छोटे पात्र की पूरी छवि गजब की 'डिटेलिंग' के साथ उकेरी गयी है। यह नॉस्टैलजिक इसलिए भी कि शैली शिवानीजी की कथाओं की याद दिलाती है। अब कालखंड और माहौल भी बनती जाती है। पूरी कथा 'विजुअल' है। हर चिट्ठी में खुलती कड़ियाँ, हीराबाई–अंजलीबाई और लाट साहब की दुनिया और संगीत की भूली–बिसरी कहानियाँ एक ऐसा नॉस्टैल्जिया बुनती है, जो हमारे सामने कभी घटा ही नहीं।

देश आजाद होने के दौर पर पहले की पृष्ठभूमि में जाकर वह बताती हैं कि जब संगीत के उस्ताद और गुरु राजनीति से हमेशा दूर रहे, कलाकारों को कुटिल उठापटक नापसंद थी। देश का जब बँटवारा हुआ, ज्यादातर मुसलमान गायक–गायिकाएँ हिन्दुस्तान छोड़ने को राजी नहीं हुए, क्योंकि अपनों के बीच गाने–बजाने की मजा ही कुछ और। बेगम अख्तर,जानकीबाई, जद्दनबाई, गौहर खान का नाम बड़ी इज्जत से लिया जाता है। इसके बरक्स आज के संगीत समारोहों का आयोजन करने– करवानेवाले, संगीतज्ञों–कलाकारों को संरक्षण देने दिलवानेवाले, उनको विदेश भेजने–भिजवानेवाले विशाल व्यावसायिक संस्थानों के उच्च अधिकारीगण और आला सरकारी अफसरान संगीत कला से कितने दूर हैं, इसका खासी तफसील मृणाल पांडे के इस उपन्यास में है।

कलाकार और रसिक बँध जाते हैं, इसकी मार्फत समवेत आनंद में, हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के आलोप हो गये एक स्वर्णिम युग की याद कराता मृणाल पांडेय का 'सेहला रे' गहरे अवसाद में डुबोने लगती है ये बंदिश

जैसे–जैसे इसकी विलंबित बढ़त होती है।

मृणाल पांडेय का उपन्यास 'सेहला रे' हमें एक अलग ही यात्रा पर ले जाता है। संगीत के सुर–ताल जिस तरह सुननेवालों को भाव–विभोर कर देते हैं, उसी तरह यह उपन्यास विभिन्न यात्राओं से गुजरते हुए पाठकों को खुद में डूब जाने के लिए मजबूर करता है। सबसे बड़ी बात यह है कि मृणाल पांडे ने बेहद खूबसूरती से इसे अलग ही लय में रचा है।

दो सदियों तक फैली हुई, टुकड़ों में मिली, जानकारियों को संजोकर भूल चूक सपने को एक मकम्मल तस्वीर सृजित किया है विद्या ने। उपन्यास हमें किसी खूबसूरत धुन को महसूस कराता है। संगीत की अलग दुनिया को पढ़ेंगे। मृणालजी को पढ़ना हर बार अलग पढ़ना है। वे आपसे कहती नहीं, आप तो बस उनसे बँध जाते हैं। उपन्यास आनेवाली पीढ़ियों के लिए संजोकर रखनेवाला दस्तावेज है, उपन्यास संगीत की अनूठी यात्रा है।

लेखक मृणाल पाण्डेय

प्रकाशक–राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली

कविताएँ

कोरोना काल में घर लौटते हुए

अंजना वर्मा
मुजफ्फरपुर
मो. 9572991995

अपने शहर में हमको
रहने भी ना दोगे
जाने भी ना दोगे
हम भूखे हैं हमको
दाने भी ना दोगे
हमने तुमसे कोई शिकायत नहीं की
झुग्गियाँ में हँसकर काटते रहे जिंदगी
तुम्हारी महँगी गाड़ियों की सैर के लिए
हम व्यस्त रहे
चिकनी सड़कों की कालीनें बिछाने में
तुम्हारे फरमान पर स्वादिष्ट व्यंजन
भूखे पेट मिनटों में तुम तक पहुँचाने में
तुम सुख–सुविधाओं के अनुसार
अपने को ढालने और बनाने में
अपनी खूबसूरत इमारतों के बाहर
एक पायदान की तरह
थोड़ी जगह भी न दोगे
हमें रहने भी ना दोगे
जाने भी ना दोगे
हम भूखे हैं हमको
दाने भी ना दोगे
हमारी गुमनाम उंगलियों के निशान
मिल जायेंगे तुम्हें
जमीन से लेकर आसमान तक
इमारतों, रेस्तराओं से लेकर विमान तक
बच्चों के खिलौनों
माँ–बहनों की चूड़ियों से लेकर
अपने परिधान तक
तुम्हारी थाली की रोटियों से लेकर
फल–फूल और दैनिक सामान तक
आज क्यों गैर हो गये हम
यह कहने भी ना दोगे
हमें रहने भी ना दोगे
जाने भी ना दोगे
हम भूखे हैं हमको
दाने भी ना दोगे
घर लौटते हुए हमारे वे साथी
जो थे संघर्ष के महारथी
हार गये जीवन रेल की पटरियों के बीच
अधूरा रह गया उनकी जिंदगी का सफर
सिर पीटती रह गई उनकी औंधी पड़ी चप्पलें
हवा में गूँजती रह गयीं सिसकियाँ
उनकी त्रासदी पर मोहर लगाकर
बिखर गई थीं लाइन पर
उनकी रोटियाँ
मुँह खोले आकाश देखती रह गई
उनकी खुली गठरियाँ
आसमान टूटा है हम पर
यह कहने भी ना दोगे
हमें रहने भी ना दोगे
जाने भी ना दोगे
हम भूखे हैं हमको
दाने भी ना दोगे

रंगमंच

एक नेता या अभिनेता जब मरता है
उधर खबरों के संसार में
मच जाती है खलबली
इधर हजारों पोस्ट
फेसबुक पर आते हैं
हजारों अँसुआयें इमोजी
हजारों श्रद्धांजलियाँ
पर जब एक जवान मरता है
चंद नमन
दस–बीस श्रद्धांजलियाँ
मिट्टी में मिल गये वे बलिदानी
जो चले गये दुनिया से
तो सबकी स्मृतियों से भी
हो गये विदा
लाखों जवान मिट–मिटकर
अपने देश की सीमाओं को
अमिट बनाये रखते हैं
अपने खून से खींचते हैं देश का नक्शा
देशवासियों को चैन की नींद देने के लिए
जागते हैं सरहदों पर
जलते हैं धूप में
गलते हैं बर्फ में
अपने लोगों को सुख और सुरक्षा की
छाँव देने के लिए
करते हैं मृत्यु का वरण
देह त्याग कर भी
सितारों की तरह करोड़ों नैनों से
अपनी प्यारी मिट्टी को
देखते रहते हैं
फिर भी भुला दिये जाते हैं
बिसार दिये जाते हैं
लाखों में से चार बलिदानी ही
याद किये जाते हैं
वह भी साल में एक बार
कहीं–कही
तब राजनीतिक चूल्हे जलते हैं
भाषणों के तवे चढ़ाकर
स्वार्थ की सेकी जाती है रोटियाँ
देश को खानेवाले
जानमाल खा रहे हैं रोज
अनंतकाल तक खाते रहने के
दृढ़ संकल्पों के साथ
जवान जवानी में करता है गोली खाकर
किसान आधी जिंदगी में
मरता है भूखा रहकर
और आत्महत्या कर
एक नहीं फटनेवाले बम की तरह
फुस्स हो जाती हैं ऐसी खबरें
सुर्खियों में रहते हैं
सुंदरियों के कैंटवॉक
अभिनेत्रियों के जलवे
इनसे बँधे हैं दिलचस्पी के तार
खबरों में दिखाए जाते हैं लगातार
संसद से असंसदीय व्यवहार
तू–तू मैं–मैं बार–बार।

समीक्षा

मानव मूल्यों को स्थापित करती लघुकथाएँ

दीपक गिरकर
28 सी वैभवनगर, इंदौर
मो. 9425067036

श्रीसंतोष सुपेकर लघुकथा के क्षेत्र में एक स्थापित हस्ताक्षर हैं, लेकिन इनकी कविताएँ भी लोगों के दिलों में अपनी छाप छोड़ती आ रही हैं। हाल ही में इनका छठा लघुकथा संग्रह 'सातवें पन्ने की खबर' प्रकाशित होकर आया है। इसके पूर्व इनके साथ चलते हुए, हाशिए के आदी, बंद आँखों का समाज, भ्रम के बाजार में, हंसी की आँखें (लघुकथा संग्रह) 'चेहरों के आर–पार' (2012), 'यथार्थ के यक्ष प्रश्न' (2015), नक्कारखाने की उम्मीदें (2020) (काव्यसंग्रह) प्रकाशित हो चुके हैं। संतोषजी एक संवेदनशील लेखक हैं। वे कविता और गद्य दोनों में सामर्थ्य के साथ अपनी रचनाओं को अभिव्यक्त करते हैं। संतोषजी वर्ष 1986 से पत्र–लेखन, कविता, लघुकथा, व्यंग्य, कहानी और समीक्षा लेखन में सक्रिय हैं संतोषजी के। इनकी लघुकथाएँ महाराष्ट्र राज्य शिक्षा बोर्ड 10वीं के पाठ्यक्रम शामिल हो चुकी हैं। लेखक कई पुरस्कारों से सम्मानित हो चुक हैं। देश के विभिन्न समाचार पत्र–पत्रिकाओं में संतोष सुपेकर की लघुकथाएँ, कहानियाँ, आलेख, संस्मरण और समीक्षाएँ निरंतर प्रकाशित हो रही हैं। समाज के तमाम विसंगतियों के प्रति लेखक के मन में गहरा विक्षोभ है। उनका यह विक्षोभ उनकी रचनाओं में मुखर होता है। लेखक ने इन लघुकथाओं में विसंगतियों और मानवीय मूल्यों को तलाशने का प्रयास किया है। संतोष सुपेकर की लघुकथाएँ समाज के ज्वलंत मुद्दों को अभिव्यक्त करती हुई दिखाई पड़ती हैं।

लेखक ने इस संग्रह की लघुकथाओं में मानवीय संवेदना, सामाजिक सरोकार और पारिवारिक संबंधों का ताना–बाना प्रस्तुत किया है। इस संग्रह की रचनाओं में रचनाकार मानवीय स्वभाव और समाज की सूक्ष्म पड़ताल करते हुए दिखते हैं। लघुकथाकार ने बहुत ही सटीकता से सामाजिक–पारिवारिक मूल्यों के ह्रास के प्रति चिंता व्यक्त की है। इनकी लघुकथाएँ हमारे आसपास की हैं। अधिकतर लघुकथाएँ भावनात्मक और मानवीय संवेदनाओं में ओतप्रोत हैं। इस कृति की रचनाओं में गहरे मानवीय सरोकार तथा समाज के यथार्थ चित्र मिलते हैं। इस संग्रह में कुल 112 लघुकथाएँ संकलित हैं। इस संग्रह की भूमिका में वरिष्ठ साहित्यकार एवं लघुकथाकार सतीश राठी ने लिखा है–''संतोषजी की लघुकथाओं में मानवीय मूल्यों को स्थापित करने के प्रयास किये गये हैं। इन लघुकथाओं में चिंतन है, जीवन है और हमारे आसपास की वह सारी चीजें हैं, जो हमें सोचने के लिए विवश करती हैं।

'वह स्वर' लघुकथा पाठकों के अंतर्मन को झकझोर कर रख देती है। 'अहं पर चोट' एक कचोटते हुए कथ्य को सामने लाती है। इस लघुकथा में व्यक्ति के दोहरे रूप को दर्शाया है। 'उपेक्षानुमान' लघुकथा में युवा मानसिकता को दर्शाने के साथ एक वृद्ध माँ की मनोदशा को भी उकेरा है। 'इस बार' लघुकथा वर्तमान परिवेश में धर्म, मजहब में छुपी धार्मिक कट्टरता को बेनकाब करती है। 'गिनीपिग्स' लघुकथा नयी दवा की ट्रायल का सबसे बड़ा कड़वा सच है। 'समझनेवाली बात', 'ड्रॉबैक' जैसी लघुकथाओं में साधारण सी बात को निराले ढंग से कहा गया है। नये दुकानदार हो क्या? मैंने कहा न, मैं बच्चे की माँ हूँ और माँ अपने बच्चे की नाप किसी कागज पर लिखकर नहीं, आँखों में बसाकर रखती है, समझे। 'भयावहता चिन्ता', 'निशानी', 'सातवें पन्ने की खबर' जैसी लघुकथाएँ सोचने पर विवश करती है। 'दिल से...' लघुकथा में एक माँ अपनी लेट–लतीफ बेटी की चिंता में घड़ी को 15–20 मिनट आगे कर देती है। ताकि उनकी बेटी ट्रेन समय से पकड़ सके। 'मौत की हत्या' मीडिया की असंवेदनशीलता की प्रवृत्ति पर चोट की गई है। वह लघुकथा समाज में व्याप्त संवेदनशून्यता को उजागर करती है। 'आदी' लघुकथा में संतोष सुपेकर बुजुर्ग जीवन की व्यथा को बखूबी उजागर करते हैं। 'इसलिए कहा था' मैं आजकल के माहौल को देखते हुए एक माँ की चिंता को गहराई से कलमबद्ध किया है।

संतोष सुपेकरजी की लघुकथा समाज के विभिन्न संदर्भ को उजागर करने का माध्यम बनती है। 'अंतिम इच्छा' लघुकथा में–''तुम्हारा मेरा कोई मुकाबला नहीं, मेरी अंतिम इच्छा सुनोगे तो तुम भी हँसोगे...मरते वक्त मेरी इच्छा थी कि कोई मुझे कम्बल ओढ़ा दे, मोटा–नरम, गरमागरम कम्बल...सड़क पर ठंढ लगने से मौत हुई थी न मेरी...।'' पंक्तियाँ ही सब कुछ कह देती हैं 'रिवर्स होता प्रश्न' में बुजुर्ग माँ–बाप की घोर उपेक्षा का सटीक चित्रण है। 'स्थितप्रज्ञ' एक मार्मिक और भावपूर्ण लघुकथा है। इस लघुकथा का अंतिम वाक्य–अनाथ बेटे ने चबूतरे पर चूने की कलम से एक औरत अर्थात् माँ की आकृति बनाई हुई थी और उसी के घेरे में सो रहा था। आराम से...जैसे माँ की गोद में सो रहा हो, उसकी छत्रछाया में हो...इस लघुकथा में बड़े कलात्मक ढंग से अपनी बात कही गयी है। 'पंक्चुएलिटी' रचना में सरकारी कार्यालयों में दीवारघड़ियों में 15 मिनट आगे–पीछे करने का कच्चा चिट्ठा खोला गया है।

'मजा नहीं', 'फायदा', 'अनोखा सत्य', 'सशक्त उदाहरण', 'गाय नहीं' जैसी लघुकथाएँ लंबे अंतराल तक जेहन में प्रभाव छोड़ती है। 'धूप ही धूप', 'आहजनित सच' जैसी लघुकथाएँ आमजन की पीड़ा को बयां करती है। 'पहचान का संकट' लघुकथा में बेटे और बाप के आत्मीय रिश्तों के बीच अर्थ और पद की मजबूत दीवार खड़ी है। 'अनुभूति' में दो पीढ़ियों की सोच में अंतर को दर्शाया गया है। अमीर आदमी के बेटे की फटी जींस को देखकर एक गरीब स्तब्ध रह जाता है लघुकथा 'स्तब्धता' में। 'ऊहापोह' लघुकथा में एक सब्जीवाले की मजबूरी का चित्रण किया है। शीर्षक को सार्थक करती, मीडिया पर प्रहार करती, मीडिया की अर्थनीति को दर्शाती संग्रह की एक रोचक रचना है। 'सातवें पन्ने की खबर' इस रचना में लेखक ने समाचान पत्रों की पोल खोलकर रख दी है। संतोष सुपेकर पात्रों की संवेदनशील तथा व्यावहारिक प्रवृत्ति पर प्रकाश डालते हैं। 'गंभीर होती हँसी' जीवन की सच्चाई खोल देती है। इस लघुकथा को पढ़ने के पश्चात् छोटू के सशक्त, स्पष्टवादी और गरिमामय व्यक्तित्व मन–मस्तिष्क पर छा जाता है।

'बदलती नजरें' लघुकथा में साधारण सी बात को निराले ढंग से कही गयी है। 'दूसरा पहलू' लघुकथा बेटे की मजबूर मन:स्थिति का बखान करती है। 'एक और डिस्टेंस' में एक माँ जो कि स्वास्थ्यकर्मी है, अस्पताल में अपनी ड्यूटी देते हुए सोशल डिस्टेंसिंग का पालन कर रही और दूसरी ओर अपनी ढाई साल कल बेटी को दूर से ही देख पा रही है।

ये सहज संप्रेषणीय, सार्थक लघुकथाएँ हैं। लेखक ने समाज को उदात्त संदेश देने का प्रयास किया है। लघुकथा 'गिनीपिग्स', 'भ्रूणहत्या', 'पछतावे भरा अतीत', 'आहजनित सच', 'किस संदर्भ में?', 'गले तक अटका जवाब' में। 'सातवें पन्ने की खबर', 'मजबूत सर्वर', 'पहचान का संकट' पैने कथ्य के कारण द्रष्टव्य है। 'वे उपसर्ग और प्रत्यय' अमूर्त पात्रों को लेकर लिखी गई लघुकथाएँ हैं। समाज की जो संवेदनाएँ दफन हो गयी है, उनको उघाड़ने और जागृत करने का सफल रचनाकार ने 'सातवें पन्ने की खबर', 'गले तक अटका जवाब', 'सिवाय हमारे' इत्यादि लघुकथाओं में किया है। इस संग्रह की अन्य लघुकथाएँ मन को छूकर उसके मर्म से पहचान करा जाती है।

इस संग्रह की लघुकथाओं में सामाजिक सरोकार भी है, रिश्तों में चेतना, नैतिक और आदर्श जीवन मूल्यों की स्थापना के प्रति गहरी संवेदना से भरी हुई है। इस संकलन की लघुकथाओं में लेखक ने घर–परिवार की छोटी से छोटी समस्याओं को विभिन्न कोणों से उजागर किया है, अनेक चेहरों से मुखौटे उतारे हैं। जीवन के विविध मार्मिक घटनाओं पर संतोष सुपेकर की बारीक दृष्टि काबिले तारीफ है। पारिवारिक रिश्तों, संबंधों की विकृतियों के विरुद्ध लेखक का आक्रोश साफ–साफ दिखाई देता है। लघुकथाकार जीवन की तल्ख सच्चाइयों से रू–ब–रू करवाता है। जीवन की विविध मार्मिक घटनाओं पर रचनाकार की बारीक दृष्टि काबिलेतारीफ है। लघुकथा को असरदार बनाने का हुनर संतोषजी के पास बखूबी है। संतोषजी की रचनाएँ देर तक पाठकों को उद्वेलित करती रहती हैं। लघुकथाएँ लेखकीय दायित्व का निर्वहन करने में सफल है।

समीक्षा

रचनात्मक विधाएँ दायरों में नहीं बँधती

सूर्यकान्त नागर
बैराठी, इन्दौर, मध्यप्रदेश
मो. 9893810050

यों तो चैतन्य त्रिवेदी कवि हैं और व्यंग्यकार भी, पर आज उनकी मुख्य छवि एक दृष्टि–सम्पन्न लघुकथाकार की है। उन्होंने कुछ उम्दा व्यंग्य लिखे हैं और काव्य–सृजन के लिए सम्मानित भी हो चुके हैं। अत: लघुकथाओं में व्यंग्य और काव्य–तत्त्वों का समावेश उनकी रचना–प्रक्रिया का स्वाभाविक अंग है। सायास प्रयास नहीं। सन् 2000 में प्रकाशित बहुचर्चित और पुरस्कृत लघुकथा संग्रह 'उल्लास' ने उन्हें एक श्रेष्ठ प्रयोगवादी लघुकथाकार के रूप में प्रतिष्ठित किया था। लोक से हटकर लिखी उन कथाओं का रचना–विधान विलक्षण था। कोई बीस बरस के अंतराल के पश्चात् अब उनका नया लघुकथा संग्रह 'कथा की अफवाह' आया है और यह कोई अफवाह नहीं है कि संग्रह 'उल्लास' के आगे का सफर है। उनकी रचना–यात्रा को नई गति प्रदान करता। नए आयाम को छूता।

इस लंबे अंतराल में उनके द्वारा लघुकथाएँ लिखते रहने के विषय में न कोई आहट सुनायी दी, न कभी कोई मंशा जाहिर हुई है। हाँ, इस बीच पत्र–पत्रिकाओं में कुछ छुट–पुट रचनाएँ देखने को अवश्य मिलीं। चैतन्य धैर्यपूर्वक साधना में लगे रहे। बीस बरस में उन्होंने बमुश्किल डेढ़ सौ लघुकथाएँ लिखीं। निश्चित ही यह श्रम साध्य काम था, पर मात्र श्रम ही सृजनात्मकता का बायस नहीं होता। उसके साथ अनुभव, चिंतन, संवेदना, प्रतिभा और अभिव्यक्ति कौशल जरूरी है और यह चैतन्य के पास भरपूर है। धैर्य लेखक की बड़ी पूँजी है और शीघ्रता कट्टर दुश्मन। चैतन्य प्रक्रिया उन लोगों के लिए सबक है, जो लघुकथा लेखन को आसान मानकर एक वर्ष में ही पाँच–पाँच सौ लघुकथाएँ लिखने का दावा करते हैं।

'कथा की अफवाह' संग्रह की प्राय: सभी लघुकथाएँ सांकेतिक और प्रतीकात्मक हैं। प्रथम संग्रह की तुलना में कुछ अधिक है। प्रतीत ऐसे होने चाहिए जो रचना के उद्देश्य व अर्थ स्पष्ट करें। परसाई, शरदजोशी, विष्णु नागर, असगर, वजाहत, सुकेश साहनी और मुकेश वर्मा की अधिकांश लघुकथाएँ इसी श्रेणी की हैं। लेखक का भरोसा इस बात में है कि यदि पाठक कथा के सूत्र तलाश कर स्वयं उसमें प्रवेश करेगा तो वह उसके लिए ज्यादा तसल्लीबख्श होगा। बलराम ने अपनी भूमिका में लिखा भी है कि अच्छी रचना का पैमाना यही है कि पढ़ने के पश्चात् वह पाठक के मन में फिर से शुरू हो और कुछ नया रचे। यह उल्लेख अप्रासंगिक न होगा कि बलराम जैसे वरिष्ठ साहित्यकार चैतन्य की लघुकथाओं के बड़े मुरीद हैं और उनके उल्लेख का कोई अवसर नहीं छोड़ते। संग्रह की कई रचनाएँ पशु, पक्षी, पेड़–पौधों, शेर, चूहे, राजा और ईश्वर को प्रतीक बनाकर लिखी गई हैं। दरअसल में प्रकृति से उठाए बिम्बों और गहरे जीवन–मूल्यों की रचनाएँ हैं। समकालीन यथार्थ से जुड़ी इन कथाओं के सामाजिक प्रयोजन हैं। समकालीन जीवन की उपेक्षा कर कोई रचना सार्थक नहीं हो सकती। मानवेतर पात्रों को आधार बनाकर दामोदरदत्त दीक्षित, विनायक और रंजना फतेहपुर आदि ने भी मनुष्य जीवन की बाहरी और भीतरी दुनिया का चित्रण अपनी लघुकथाओं में किया है। पशु–पक्षियों के जरिए आधुनिक जीवन की विसंगतियों विद्रूपताओं को उजागर करने की कोशिश की है। लेकिन चैतन्य का जंगल–तंत्र इनसे भिन्न हैं। यह अलग किस्म का रचना संसार है।

कठोर–तंत्र तो एक आपको अभिव्यक्ति का अवसर दे सकता है, पर डरा हुआ तंत्र यह खतरा नहीं उठा सकता। आपकी चुप्पी उसके हित में है। असल शेरदिल तो वह है, जो आपको बोलने की आजादी देता है। धूर्तता मनुष्य की पहचान का सर्वाधिक सुगम साधन है। इससे आप उस अंधेरे में भी पहचान सकते हैं। उसे सर्च (खोज) करने के लिए किसी लेजर या स्पॉट लाइट की आवश्यकता नहीं है।

अफवाह आग की तरह फैलती है। अफवाहों से भ्रमित हो लोग सही–गलत के बीच भेद नहीं कर पाते। जो अफवाहों को जन्म दे लोगों को भटकाते भरमाते हैं, उनकी शिनाख्त जरूरी है। अफवाह में गाफिल नहीं जानते कि उन्हें खुदकुशी की ओर धकेला जा रहा है। कैसी विडम्बना कि कोई शुभ संदेश उतनी तेजी से वायरल नहीं होता, जितनी अफवाह होती है। अफवाहों का तांडव पिछले दिनों लोगों ने देखा ही है। हरिश्चन्द्र क्यों मानस में नही रहते ?मरे हुए चूहे को सोने के चूहे में बदलने की अविश्वसनीय कथा में एक सच की तरह पूरे शहर को अपनी गिरफ्त में लेकर अराजक स्थिति पैदा कर दी। इस असंगतता को बड़ी कलात्मकता से प्रस्तुत किया गया है लघुकथा 'कथा की अफवाह' में।

संग्रह की कथा 'इंतजाम और कला' लघुकथा में बैठे मुखिया और व्यवस्था से जुड़े सिपहसलारों की असंवेदनशीलता और कला के प्रति उनकी उदासीनता को उजागर करती है। यह भी कि जबतक कलाकार पात्र के अंतर्मन में नहीं उतरता, उसकी संवदेना का अंग नहीं बनता, उसके साथ एकाकार नहीं होता, अपना अक्स उसमें नहीं देखता, तबतक वह अपनी रचनात्मकता के साथ न्याय नहीं कर सकता। कलाकार को उपेक्षित और अपमानित कर उससे सही परिणाम की अपेक्षा नहीं की जा सकती।

'चोर तो था वह लेकिन' में करुणा और दया की अंतर्धारा प्रवाहमान है। यह दोतरफा है। एक तरफ चोर का मन है, जो स्त्री को उसके प्रेमी द्वारा भेंट किये उपहार लौटाने आता है, तो दूसरी तरफ स्त्री की संवेदनशीलता है कि वह उस चोर को गिरफ्तार होने से बचा लेती है। कथा में प्रयुक्त दो संवाद गहरे जीवन–दर्शन से जुड़े हैं (एक) 'मैं चीजें चुराता जरूर हूँ, पर किसी का जीवन नहीं। किसी की तसल्ली नहीं' (दो) 'घर में रखी चीजें सिर्फ चीजें नहीं होतीं, उनके इर्द–गिर्द वह घर भी होता है।

सीमित आयवाले व्यक्ति की जेब अक्सर खाली रहती है। वेतन हाथ में आने से पहले ही उसके खर्च का बजट तैयार हो जाता है। सारी तनख्वाह घर–परिवार की जरूरतों की भेंट चढ़ जाती है, कैसी विडम्बना कि मेहनत से कमानेवाले के पास खुद अपने लिए कुछ नहीं होता। अपनी बेबसी पर उनकी आँखें भीग जाती हैं। ये आँसू बेबसी से ज्यादा विसंगत समाज की दुर्व्यवस्था पर हैं। गरीबी अपने आपमें बड़ा अभिशाप है। वर्ग विभाजित समाज पर 'बेबसी' एक अच्छा व्यंग्य है।

एक और विचारोत्तेजक लघुकथा है 'सूई'। काँटों की तुलना में कितनी सभ्य, शालीन और दयालु है सूई। काँटे चुभते हैं, घाव करते हैं, प्रतिरोध करते हैं, जबकि तीखी होते हुए भी सूई बिना शोर के जोड़ने का काम करती है। उसका दर्द उसका अपना है। जमाना उसकी चीख पर नोटिस नहीं लेता। निष्ठुर जमाने के रिवाज पर गहरा प्रहार करती है यह रचना।

कट्टरपंथियों के समक्ष न कोई आदर्श होता है, न सिद्धांत, न तर्क, न विवेक। दरअसल वे पागल और अंधे होते हैं। किसी के धर्म की जाँच भी वे बहशी तरीके से करते हैं। दंगाइयों के खेल में निरपेक्ष व्यक्ति बेवजह पिसाता है। सांप्रदायिक तत्वों की नजर में मतवाद स्वीकार न करनेवाला निरावलंबित व्यक्ति ही पागल है। समकालीन यथार्थ से रू–ब–रू कराती 'दंग की शाम' लेखकीय प्रतिबद्धता का प्रमाण है। बिखरे और पिघले बिना आप कुछ हासिल नहीं कर सकते। कुछ पाना है तो खोना भी होगा। झुककर, विनम्र होकर ही आप दूसरों का दिल जीत सकते हैं। उनके दर्द को समझ सकते हैं। (फूल और शूल)

संग्रह की कुछ अन्य उल्लेखनीय रचनाएँ हैं–खोज, साधु और शेर,

धर्म पुस्तक, ईश्वर का काम, सिंहासन और पुतलियाँ।

संग्रह की कथाएँ बौद्धिक और कलावादी हैं। उनमें गहरा जीवन–दर्शन है। लेखक के व्यापक जीवनानुभव की छाप वहाँ है। अमूर्त होने से उनपर जटिलता का आरोप लग सकता है, क्योंकि अमूर्त रचना के कई पाठ हो सकते हैं। पाठक अपने–अपने हिसाब से उसका अर्थ निकाल सकता है। रचनात्मक संवेदना अति जटिल और बुद्धिवादी होने पर सम्प्रेषणीयता का संकट खड़ा हो सकता है। कथानक से ही रचना का उद्देश्य और अभ्यांतरिक अर्थ स्पष्ट होता है। अत: कला और अनुभव के बीच एक समावेशी बोधगम्य भाव होगा तो रचना अपने लक्ष्य को भेद पाएगी। वैसे मुखरता पर अंकुश के बावजूद अन्वेषण के लिए संग्रह की लघुकथाओं में काफी कुछ छोड़ा गया है। परतों के पीछे सत्य को शिद्दत से उजागर किया गया है। लगता है, यह बदलते यथार्थ में आए रूपात्मक बदलाव को सामने लाने की कोशिश की है। ऐसा लेखन गहरे चिंतन और जबरदस्त कल्पनाशीलता के बिना संभव नहीं। कल्पना भी रचनात्मक हो, जो असत्य को भी सत्य की तरह प्रस्तुत करे। प्रयोगात्मकता से ही प्रगति की राहें खुलती हैं। सीमा लाँघे बगैर यह संभव नहीं है। चैतन्य को शिल्प और कथ्य दोनों स्तरों पर नए आयामों की तलाश है। वे भाषा के प्रति भी सजग हैं। अर्थगर्भी भाषा में एक अलग किस्म की कलात्मक सादगी है। वस्तुत: ये बहुत बारीकी से बुनी और सलीके से सजायी गई रचनाएँ हैं। लेकिन यह सारा आयोजन किसी फैशन की तरह चौकाने के लिए नहीं है। वस्तुत: यह रचनाकार के एकांतिक चिंतन और आंतरिक पुकार का प्रतिफल है।

कथा की अफवाह (लघुकथा संग्रह)
लेखक : चैतन्य त्रिवेदी, प्रकाशक किताब घर,
दरियागंज, नई दिल्ली

कविता

पुनर्वास

संजय कुमार सिंह
प्रिंसिपल, महिला कॉलेज
पूर्णिया मो. 9431867283

गंगे!
आज जब हृदय की प्यास
उभर आयी है होठों पर
दूर तक फैल पसर रही आत्मा पर
व्यथा की परछाई
एक–एक कर झुलस रहे हैं
इच्छाओं के कल्पतरु
और विकल हो रहे हैं मन–प्राण
तब तुम क्यों सूख रही हो
सूखकर कौन सी नदी मर गयी
जो तुम मर जाओगी
तुम बहो, मेरी अंतश्चेतना में अमृता

यही सही है भागेश्वरी
कि पुण्य ही जाता है पुण्य के पास
पर आज मैं आया हूँ तुम्हारे पास
दुख की तप्त रेत पर चल कर
मेरे मन की मरुभूमि को भी
चाहिए सजल प्रवाह
कल कल गति

किसने कहा मोक्ष
मुझे जीवन चाहिए गंगे
बहो, बहो, बहो
चेतना में चिन्मय धार बनकर
देह में रस धार बनकर

हर हर गंगे
धरती पर जो माँगे मोक्ष
मैं नहीं माँगूँगा मोक्ष
मैं तो अभी जीवन माँग रहा हूँ माँ

तुम बहो मेरे रिक्थ के ऋषिकेश में
हृदय के हरिद्वार में
प्राण के प्रयाग में
वाणी की वाराणसी में
भाग्य के भागलपुर में
हिमालय से हुगली तक
तुम बहो
सृजन के सुंदरवन में
फल और फूल बनकर
किसी भी रूप में इसी धरती पर बहो
कल्याणी

धरती से कभी मत रुठो
रूठ भी जाओ तो
हृदय की गंगोत्री से निकलकर
आँखों से नदी बनकर बहो
बहोगी तुम सतत, तो जीवन है
यह नश्वर संसार भी अमर है
तुम्हारा बहना जरूरी है
इस कलिकाल में पाप–ताप मोचिनी
हर हर गंगे! गंगे!! गंगे!!!

कविता

सूर्यप्रकाश मिश्र
बभनौनी, बलिया (यू.पी)
मो.–09839888743

दोयम

लिये फिरा करता था झण्डा
पर अब अलग मुकाम हो गया
मंगरू नमक हराम हो गया

साथ–साथ था बचपन से ही
दिल के उनके बहुत पास था
भौंचक्के हैं बाबू साहब
मंगरू उनका बहुत खास था

भोंपू बनकर बिरादरी का
अब कुवार का घाम हो गया

आँख मिलाने से बचता है
तनकर मगर खड़ा रहता है
अब बस वही काम करता है
जो उसका मुखिया कहता है

अलग तरह की सुबह हो गया
अलग तरह की शाम हो गया

गाँव–गाँव रिश्तों की चादर
सब खूँटी पर टाँग रहे हैं
जो जीते थे रहम करम पर
हिस्सा अपना माँग रहे हैं

मौसम आया अलग ढंग का
परिवर्तन पैगाम हो गया

लेकिन अपने नाम पे अड़ा
अभी तलक दोयम दरजा है
जो उस खेमे में परजा था
इस खेमे में भी परजा है

हवा भले ही राज कह रही
लाख टके का काम हो गया।

समीक्षा

आधा आदमी : आदमी के अस्तित्व को अभिव्यक्त करती कविताएँ

डॉ. नीलोत्पल रमेश,
बुधबाजार, हजारीबाग
मो0 9931117537

'आधा आदमी' अशोक कुमार का पहला काव्य संग्रह है। इसके पूर्व में कवि की अनेक कविताएँ विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। इस संग्रह में शामिल अधिकांश कविताएँ आदमी की पहचान को लेकर लिखी गई हैं, जिसमें कवि चिंतित है कि आदमी में आदमीयत पूर्णरूप से नहीं रह गई है, उसकी पहचान का संकट उत्पन्न हो गया है। यही कारण है कि आदमी आधा ही रह गया है। कविता जिस तरह से लगातार लिखी जा रही है, उसमें कविता के अस्तित्व को खतरा उत्पन्न हो गया है। ऐसे समय में अगर कोई कविता को बचाने के लिए लिखता है तो वह काबिले तारीफ हैं। ऐसे ही कवि हैं–अशोक कुमार 'आधा आदमी' कविता संग्रह में अशोक कुमार की 65 कविताएँ संकलित हैं। इस संग्रह में 'आधा आदमी' शीर्षक से एक कविता है ...आदमी की बात तो अनेक कविताओं में आयी हैं, जिससे आदमी की मुकम्मल पहचान बन सके। यह बात स्पष्ट है कि कवि आदमी के अस्तित्व को लेकर चिंतत है 'खोई हुई मुस्कानों का शहर' कविता में कवि मुस्कान के व्यवसायीकरण की बात करता है यानी अब मुस्कान भी मुफ्त में नहीं मिलनेवाली है। यह तो बीते जमाने की बात हो गई। जब कोई एक–दूसरे से मिलता था तो उसके चेहरे पर मुस्कुराहट दिखाई पड़ती थी, अब वही मुस्कुराहट व्यवसाय में बदल गई है, शो केसों में बंद हो गयी है। यही व्यावसायिकता अब भूमंडलीकरण हो गयी है। साफ–साफ बात यह है कि

''खोई हुई मुस्कानों के शहर में
एक बात और अलग थी
कोई था जो ठठाकर हँसता था
शायद वह कोई और था
और वह किसी काँच की दीवार के पीछे
अपनी मुस्कान को पेट लिए नहीं खड़ा था
वह मुस्कानों की कालाबाजारी का कोई व्यापारी था
उसकी ऊँची दीवारें थीं
वह मुस्कुराता था
वह ठठाकर हँसता था।''

'कवि ऐसे समय का' कविता में कवि कहता है कि आज कविताएँ जिनके लिए लिखी जा रही हैं, उन तक नहीं पहुँच रही है। जिन तक पहुँच रही हैं, वे उनके लिए है ही नहीं। कविताओं का अस्तित्व को लेकर कवि चिंतित है कि कविताएँ छपती तो हैं, लेकिन बिकती नहीं। जबकि अब कविताओं का तेवर बदल गया है। कवि लिखता है–

''कवि हूँ ऐसे समय का जिसमें
कविता एक लंबी दूरी की यात्रा कर थकी–थकी लगती है
ऐसे समय में कविताएँ जिन लोगों के लिए लिखी गई थी
उनके बीच नहीं पढ़ जा रही थीं
और जहाँ पढ़ी जा रही थीं
वहाँ वे नहीं थे
जिनके समय में भूसे की जुगाली की जा रही थी वहाँ।''

'अधूरे' शीर्षक के माध्यम से कवि सभी के अधूरेपन की बात करता है। इस संसार में कोई पूर्ण नहीं है। आस्तिकों में थोड़ा नास्तिक और नास्तिकों में थोड़ा आस्तिक के गुण बचा रहता है। यह दुनिया भी पूर्ण नहीं है, सब कुछ अधूरा ही है। कवि इसी अधूरेपन को यों व्यक्त करता है–

''मैंने पुरुषों में पुरुष तलाशा
स्त्रियों में स्त्रियाँ
पुरुष किंचित् स्त्रैण निकले
स्त्रियाँ थोड़ी मर्दानी।''

'मेरे गाँव की नदी' कविता के माध्यम से कवि अपने गाँव की नदी के बहाने अपने स्मृतियों को गाँव में ले जाता है, फिर इस नदी से जुड़ी हुई अनेक किंवदन्तियों के सहारे उसके अतीत और वर्तमान को जोड़ना चाहता है, ताकि आनेवाली पीढ़ी इससे पूरी तरह वाक़िफ हो सके। वह यह भी बता देना चाहता है कि इस नदी में चीनी मिलों के मलवे ही अब बहते हैं। इसकी स्वच्छता और पवित्रता अब नहीं रही, वह लिखता है–

''लेकिन एक कहावत थी उसके बारे में
कि जब राम सीता जा रहे थे वनवास
और सीता मैया को जब लगी प्यास
लक्ष्मण ने अपने बाण से बिंधा था धरती की छाती
और वहीं से निकली थी वह नदी
जो अब हमारे गाँव से बहती थी
और बुझाती थी लोगों और डांगरों की प्यास।''

'जूते– शीर्षक कविता में कवि समाज के कई यथार्थ से पाठकों को परिचय करना चाहता है। 'जूते' शीर्षक से कवि की दस कविताएँ हैं, जिसमें ये बातें स्पष्ट होकर निकली हैं–

''नए जूते पैरों को काटते हैं
क्या मित्रता पुरानी होकर मुलायम होती है
जूतों की तरह।''(जूते 4)
''जूते बदहाल होने तक
मुझे शर्मसार नहीं होने देते
वे मुस्कुराते हैं तबतक
और मेरे फटे मौजों के इकलौते राजदार होते हैं
ताउम्र।''(जूते 10)

'आधा आदमी' शीर्षक नामित कविता में कवि आदमी के आधा होने की बात करता है। वह कहता है कि आदमी अपनी शक्ति श्रमशक्ति को दे दिया है, तभी तो वह पूर्ण होकर काम करता है। यही कारण है कि आदमी के हाथ की डोर फिसल रही थी–

''मशीन आधा आदमी हो गया था
और खुश था
आदमी आधा ही मशीन रह गया था
और वह खुश था
आधे की भरपाई की प्रक्रिया जारी थी
मशीनों का अश्वमेध का घोड़ा छुट्टा घूम रहा था
अश्वशक्ति का दम्भ लिये
लगाम की रस्सी फिसल रही थी
कहीं कोइ डोर आदमी के हाथों से छूट रही थी।''

'पिता' कविता के माध्यम से कवि ने अपनी माँ और पिता की अहमियत को बतलाया है। दोनों का अस्तित्व एक दूसरे से अलग नहीं है। दोनों के रहने भर में ही बच्चे की सारी मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं। वे दोनों हैं तो

अलग–अलग पर लगते नहीं है। कवि लिखता है–

''पिता–तुम अलग लगते हो
पर नहीं हो अलग
नहीं हो कतई जुदा
माँ की पोरों से अपनी ममतामयी सुगंध से
हम सने हुए थे
तुम्हारे बलिष्ठ और चौड़े सीने में था पसरा हुआ एक
लंबा चौड़ा बरगद
जिसके नीचे हम रह और बच सकते थे
जिंदगी की गर्मी और धूप से।''

'माया महल' कविता के माध्यम से कवि ने महाभारत काल में मायासुर द्वारा निर्मित मायामहल की चकाचौंध की ओर ध्यान दिलाया है। उस समय के परिवेश और वातावरण से पाठकों को अवगत कराते हुए कवि आज की स्थिति में उसकी सार्थकता की तलाश करता है। कवि लिखता है–

''मायासुरों को क्यों
ऐसे शिल्प की आवश्यकता थी
कि जहाँ फर्श सुसज्जित हो
वहाँ पानी हो
मायासुर को क्यों निर्देशित किया गया
कि जहाँ पानी हो
वह कठोर फर्श दिखे।''

अनुवादक कविता के माध्यम से अनुवादक की परेशानियों और समस्याओं की ओर ध्यान दिलाया है। अनुवादक को यह परेशानी होती है कि वह जिसका अनुवाद करता है, उसका मूल बचा रहे। संप्रेषणीयता बची रहे, तभी तो पाठक हू–ब–हू रचना से परिचित हो सकेंगे। अनुवादक की व्यथा को कवि ने यों व्यक्त किया है–

''वह व्यथा की कथाओं का जब करता है अनुवाद
एक गैर भाषा से अपनी भाषा में
तो चौकन्ना हो जाता है कुछ ज्यादा ही
उसे डर सताता है उस वक्त
कहीं व्यथा को व्यक्त करता एक शब्द
उन अनगिन लोगों के साथ धोखा न कर जाएँ
जो व्यथा के गीत गाते वक्त
उसे हृदय में मौजूद करते हैं
और आँखों में छलकाते हैं।''

'जिंदगी की भाषा और लय' कविता के माध्यम से कवि ने आदमी के अस्तित्व को बचाए रखने की बात की है। आदमी का जीवन परेशानियों से भरा पड़ा है। यही कारण है कि वह सही आदमी की तलाश नहीं कर पा रहा है। कवि लिखता है–

''शाम होते ही अपने घर में
दुबका हुआ आदमी
अपने सपनों के संग सोता है
अगली होनेवाली सुबह के साथ
तालमेल बिठानेवाले
शब्दों की तलाश में
सही अक्षर सही हरफ
सही शब्द सही जुमलों में जन्म देनवाली
भाषा की लय में।''

'दुरुह समय का सच' कविता के माध्यम से कवि समय की दुरुहता को व्यक्त करना चाहता है। यह समय बहुत ही कठिन होते जा रहा है। इस कठिन समय में सब कुछ कठिन हो गया है, उसमें समय भी शामिल है। वह अपनी सच्चाई के साथ आज का यथार्थ वर्णन करना चाहता है। कवि लिखता है–

''पके हुए समय में किसी मन को तप कर निखरना था
आवेग की परिधि से बाहर
देह को हाड़ की कठोरता और मांस की
मांसलता के लबादे को उतार फेंकना था
वासना को बाजार की तंग गलियों से गुजरकर
तलाशनी भी एक महफूज जगह
लालसा को खोजनी थी एक संकरी गुफा
अपनी केंचुली छोड़ने के लिए।''

'आधा आदमी' में अशोक कुमार ने समय के तेवर को पकड़ने की कोशिश की है। समय को पकड़कर लिखनेवाला कवि ही समय के साथ चल सकता है, अन्यथा वह कहीं का नहीं रह जाता है। जिस कवि ने समय से साक्षात्कार कर लिया है, उसकी कविता की धारा के साथ गुजरते चली जाती है। कवि की संवेदना उस स्तर पर समय की नब्ज को पकड़कर चलती दिखाई पड़ रही है 'आधा आदमी' में। ये कविताएँ पाठकों को अपनी ओर ध्यान खींचने में भी सफल हुई हैं। 'आधा आदमी' के आमुख में प्रसिद्ध आलोचक और संपादक आशुतोष कुमार ने ठीक ही लिखा है–''आधुनिक कविता न तो भावावेश की अभिव्यक्ति है, न भाषा का खेल मात्र, वह न तो विचारधारा का पद्यानुवाद है, न आदर्श समाज या राष्ट्र के निर्माण की प्रेरणा। वह सिर्फ अपने समय का ध्यान साक्षात्कार है। एक ऐसा साक्षात्कार, जिसकी सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह किस हद तक समय के तेवर को बदल सकता है?''

'आधा आदमी' (कविता संग्रह)
प्रकाशक : रश्मि प्रकाशन, लखनऊ

ग़ज़ल

सलिल सरोज
नई दिल्ली
9968638267

वो तुम्हें झूठ पहले रो कर कहेंगे
फिर सीने पर खड़े होकर कहेंगे

आला–ईमान के मालिक हो तुम
वो भरे बाजार तुम्हें जोकर कहेंगे

तुम्हें खुदा अपना भगवान कहेंगे
और चुनाव के बाद नौकर कहेंगे

कमाते हो तो हीरे–जवाहरात हो
बेजाँ बुढ़ापे में तुम्हें कंकर कहेंगे

इश्क करने की रवायत बदल लो
वर्ना सनम राह की ठोकर कहेंगे

तुम्हीं तो हो अमन चैन के दुश्मन
हर घर में नफरत बो कर कहेंगे

कब करोगे हमारे दिल की बात
'साहब' कहते हैं सो कर कहेंगे।

समीक्षा

कुरुक्षेत्र गाथा : व्यक्ति की आंतरिक विकास यात्रा

डॉ. अरुण कुमार वर्मा
पदमी मंडला (मप्र.)
मो. 9754128757

'कुरुक्षेत्र गाथा' प्रबंध काव्य का प्रथम संस्करण 2016 में समन्वय प्रकाशन अभियान जबलपुर से प्रकाशित हुआ। इसकी रचना बुंदेली माटी के सच्चे सपूत श्रीदुर्गा प्रसाद खरे जी ने 1968 में आरंभ किया था। खरे जी के असमय काल कलवित हो जाने के कारण आचार्य संजीव वर्मा सलिल ने अधूरी रचना को पूरा करने का बीड़ा उठाया, जिसका प्रतिफल हमारे सामने है। स्वर्गीय खरे जी की सुपुत्री आभा खरे के प्रयासों से डॉ. साधना वर्मा के संपादन में भगवद्गीता की विषय वस्तु को काव्यात्मक रूप में प्रबंध काव्य 'कुरुक्षेत्र गाथा' व्यक्ति की आंतरिक विकास यात्रा को प्रशस्त करने हमारे बीच उपस्थित है। प्रस्तुत शोध प्रबंध काव्य दो रचनाकारों के द्वारा पूर्ण होने के कारण विचारधारा, पृष्ठभूमि, शब्द चयन, सृजनशैली एवं अभिव्यक्ति की दृष्टि से अंतर होना स्वाभाविक है, परन्तु अध्ययन के दौरान यह अंतर पूरी तरह से मिट गया है। एक चीज यहाँ स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि प्रस्तुत गीता अनुवाद नहीं उस विषय वस्तु पर आधारित मौलिक उद्भावनाओं की सृष्टि करती है। इसमें वर्तमान परिवेश को लक्षित करने का प्रयास किया गया है और इस परिवेश में हम अपने जीवन को सफल कैसे बना सकते हैं एवं दूसरे की सफलता में मदद कैसे कर सकते हैं, उस दिशा में प्रयास किया गया है।

'कुरुक्षेत्र गाथा' प्रबंध काव्य की विषय–वस्तु महाभारत के भीष्मपर्व का अंग है। 'भगवद्गीता' के स्वरूप में यह स्वतंत्र ग्रंथ के रूप में भी लोगों के आकर्षण का केन्द्र आज भी रहा है। भगवद्गीता 18 अध्याय एवं 700 श्लोकों से सुव्यवस्थित उपनिषदों के अध्यात्म को स्वीकार करनेवाला ग्रंथ है। वेदों की ब्रह्मविद्या तथा उपनिषदों के अध्यात्म का मणिकांचन सामंजस्य गीता की खूबसूरती है। महाभारत की युद्धभूमि में अपने स्वजनों को अपना प्रतिद्वंद्वी देख अर्जुन विषाद ग्रसित हो जाते हैं। उस समय उनको कर्मपथ पर अग्रसर करने के लिए भगवान कृष्ण के द्वारा गाया हुआ ही भगवद्गीता है। यह तथ्य स्पष्ट करने की आवश्यकता इसलिए है कि 'कुरुक्षेत्र गाथा' का आधार भगवद्गीता ही है। भगवद्गीता अपने आपमें पूर्ण तथा 5000 वर्ष पूर्व लिखी होने के उपरांत आज भी हमारे लिए अनुकरणीय तथा आगे भी मानव जाति का मार्ग प्रशस्त करती रहेगी। भगवद्गीता को ही आधार मानते हुए 'कुरुक्षेत्र गाथा' का सृजन किया गया है। अपने में पूर्ण होने के कारण नया कुछ जोड़ने की गुंजाइश नहीं है, परन्तु इसका सरलीकरण लोगों तक पहुँचे और वर्तमान से जुड़े यह अत्यन्त आवश्यक है। इस जिम्मेदारी का 'कुरुक्षेत्र गाथा' में बाखूबी निर्वहन हुआ है। सामान्य पाठकों के लिए सहजता से ग्राह्य होना इसकी विशेषता है। यह कृति दो रचनाकारों द्वारा पूर्णता को प्राप्त हुई है। रचनाकारों का विचार–विभेद होना स्वाभाविक है, परन्तु प्रस्तुत कृति में यह अंतर पाठक आसानी से कर नहीं पाते हैं। इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए कृति की सम्पादक डॉ. साधना वर्मा लिखती हैं–''स्वर्गीय खरे जी ने गीता के प्रसंगों की व्याख्या स्वतंत्रतापूर्वक की है, जबकि सलिल जी मूल के निकट रहे हैं।''

'कुरुक्षेत्र गाथा' प्रबंध काव्य गीता के बहाने मानव के विषाद से लेकर आनंद की अवस्था की यात्रा है। भारतीय साधना पद्धति योग की यात्रा के द्वारा इस लक्ष्य तक पहुँचने का सही मार्ग स्वीकार करती है। योग के विषय में दो दृष्टिकोण स्वीकार किये जाते हैं। 'समत्वं योग उच्यते' गुणों के वैषम्य से साम्य भाव रखना ही योग है। दूसरा 'योगः कर्मसु कौशलम्' कर्मों में लगे रहने पर भी ऐसे उपाय से कर्म करना ही वह बंधन का कारण न बन सके। यह योग की दूसरी अवधारणा गीता का सार है। गीता में 18 सर्ग हैं। 'कुरुक्षेत्र गाथा' भी 18 सर्गों में बद्ध है और गीता से इसके सर्गों में साम्यता भी है। इसके सर्गों का विवरण इस प्रकार है–दुविधा और विषाद, संदेह, कर्मयोग, ज्ञानयोग, सांख्ययोग, समलक्ष्मी, सच्चा योग, ईश्वर ही है प्रकृति, विश्व का विकास क्रम, सृष्टि से बड़ा सृष्टिकर्ता, अंतर्यामी परमात्मा, अव्यक्त सत्य, शक्ति और ध्यान, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ, सर्वोच्च ज्ञान, विश्व वृक्ष, सम्पदाएँ, श्रद्धा–तप–यज्ञ–दान, सनातन ज्ञान। गीता और कुरुक्षेत्र गाथा के सर्गों के नामकरण में कुछ विभेद भले है, परन्तु विषय वस्तु में साम्यता है। ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग मुख्य प्रपाद्य कुरुक्षेत्र गाथा का भी है।

'कुरुक्षेत्र गाथा' के माध्यम से पाठकों के आत्मिक विकास यात्रा को सरलता से पाठकों तक पहुँचाने का प्रयास रचनाकर द्वय के द्वारा किया गया है। भगवद्गीता की ही तरह युद्धभूमि में कृष्ण के द्वारा दिया गया संदेश ही है, परन्तु रचना विधान की सरलता के कारण इसका निहितार्थ सामान्य मानव तक भी आसानी से पहुँच जाता है। इसकी विशेषता यह है कि इसको पढ़ते समय अर्जुन और सामान्य मानवका भेद मिट जाता है और 'कुरुक्षेत्र गाथा' सामान्य मानव के जीवन की समरगाथा बन जाता है। 'दुविधा सर्ग' एक उदाहरण देखिये–

''पशुओं से हैं हम भिन्न तभी
जब ज्ञान उचित अनुचित का हो
आहार नींद भय काम मोह
होकर भी वंश धर्म मुक्त हो।''

इन्द्रियों को बस में करना ही आत्मिक यात्रा की पहली सीढ़ी है। इन्द्रियों की प्रबलता ही मनुष्य की लालसाओं को बढ़ा देती है और वह दासता की बेड़ियों में जकड़ उठता है'

''इन्द्रियाँ प्रबल जब होती, मन दास बना रहता है
अनुरक्त लालसाओं का आवास बना रहता है।।''

भगवद्गीता निष्काम कर्म को प्रमुखता देती है। 'कुरुक्षेत्र गाथा' में भी निष्काम कर्म की मान्यता को स्वीकार किया गया है और यह बताया गया है कि निष्काम कर्म योग से ही संभव है। योग का मर्म भगवान श्रीकृष्ण भी गीता में समझाते हैं। आदिदेव शिव को योगी कहा जाता है। अर्थात् योग हमारी आदि मान्यता है। 'सच्चा योग' सर्ग में योग के विधान पर प्रकाश डाला गया है–

''कर शरीर सिर गर्दन स्थिर
आसन सुखद सहाय लेकर
जमा दृष्टि नासाग्र भाग पर
नयन लक्ष्य पर ही केन्द्रित कर
ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर
मन ईश्वर की ओर मोड़कर
चंचल हीन शांत निर्भय बन
करके लीन उसी में यह मन
हो संयमित बैठना
ध्यान मग्न है बनना।''

योग से ही निष्काम कर्म की ओर बढ़ा जा सकता है। निरंतर योग के अभ्यास से हमारे अर्जित संस्कार छँटने लगते हैं और हम अपने मूलस्वरूप की ओर अग्रसर होते चले जाते हैं। आधुनिक संस्कारों को मुक्त होकर अपने मूलस्वरूप में आना ही मोक्ष है। यज्ञ भाव से हीन कर्म हमको बंधन की ओर ले जाते हैं–

''यज्ञ भाव से हीन कर्म, जब भी लहराया भाया है।
तब–तब बंधन ग्रस्त हुए हैं हम मोक्ष न हमने पाया है।।''

निष्काम कर्म की राह सीधे जग कल्याण की ओर जाती है–

''जिसमें जग कल्याण छिपा हो, होती वह साधना अकाम
अनासक्त भावों से करना कर्म, आय तब मिले सुधाम।।''

'कुरुक्षेत्र गाथा' महाभारतकालीन स्रोत से वर्तमान समस्याओं को टटोलने और सार्थकता से उसे आज के साथ जोड़ने का अच्छा प्रयास है। वर्तमान समाज ईश्वर की अवधारणा को लेकर मकड़जाल में फँसा है। यह धर्म सम्प्रदाय के झूठे आडम्बरों में सिमटकर प्रतिहिंसा की तरफ बढ़ रहा है। इस पुस्तक में ईश्वर के सार्वभौम रूप को महत्व दिया गया है। ईश्वर में एकाकार होना ही सच्ची भक्ति है। यह अवस्था आ जाने से अपने पराये का भेद मिट जाता है और संपूर्ण विश्व में उस ईश्वर की सत्ता परिलक्षित होने लगती है–

''जिसने देखा परमात्मा को
व्याप्त सब जगह सभी वस्तु में
सभी वस्तुएँ जो इस जग की
जिसने देखी व्याप्त उसी में
उससे ईश्वर दूर कहाँ है
कहाँ दूर है वह ईश्वर से
उससे दूर न ईश्वर होता
और न वह होता ईश्वर से
जितना ईश्वर अद्वितीय है
उतना ही वह सार्वभौम है
ज्यों–ज्यों आत्मा गुरुतर होती
त्यों–त्यों ज्ञान फैलता जाता
ब्रह्म आत्मा में आदि देखा
तो वह जगत हो जाता
और जगत उसमें रम जाता
चित्रगुप्त साकार दिखाता
व्याप्त ईश्वर सबमें
सब हैं रहते उसमें।''

जीवन के सफर में अनुभव का बहुत महत्व है। परिवर्तन आवश्यक है, लेकिन अनुभव के आधार पर होना चाहिए। वर्तमान समाज पुराने अनुभवों को सिरे से खारिज कर देता है। यही हमारी प्रमुख समस्या है। हम कितने भी ज्ञान अर्जित कर लें, लेकिन उसमें पूर्णता का बोध कहाँ आ पाता है। सच्ची तृप्ति तो अनुभव से ही प्राप्त होती है–

''ज्ञान अशक्त अकेला रहता पूर्ण बोध कब दे पाता
तृप्ति पूर्ण अनुभव से मिलती जो विज्ञान जुटा लाता।''

ब्राह्मण कौन है के सवाल पर 'कुरुक्षेत्र गाथा' में स्पष्ट मत है–

''आस्तिक बुद्धिज्ञान शास्त्रों का परम तत्व का अनुभव करना
जिसे साध्य हों ये सारे गुण, पार्थ उसे ही ब्राह्मण कहना।''

योग आध्यात्मिक यात्रा का सफर है। धर्म जहाँ से समाप्त होता है आध्यात्मिकता वहीं से शुरू होती है। धर्म का सही स्वरूप भी आध्यात्मिक ही होता है, परन्तु धर्म का ढोंग करनेवाले आध्यात्मिक को धर्म से अलग देखते हैं और आध्यात्मिक को दूसरे लोक की वस्तु मान लेते हैं, जबकि भारत का मूल धार्मिक स्वरूप आध्यात्मिक है या यूँ कहें कि धर्म और अध्यात्म को अलग करके देखने की वृत्ति हमारी किसी युग में नहीं थी। आध्यात्मिकता समान दृष्टि को जन्म देती है, जो कि धार्मिकता में नहीं देखने को मिलता है। वहाँ उपासक कर्मकांडों में ही उलझकर रह जाता है और आंतरिक विकास के स्तर पर वह वहीं स्थिर होता है, जहाँ से शुरूआत की थी। आध्यात्मिकता के चरम का एक उदाहरण देखिए–

''होगी समान दृष्टि
और तब हम
गाय में कुत्ते में
हाथी में, जन्तु में
चाण्डाल में, ब्रह्मण में
देखेंगे नहीं अंतर पायेंगे नहीं कोई भेद
घृणित के प्रति नहीं होगी घृणा
आकर्षण के प्रति नहीं होगा प्रेम
देखेंगे सब में
वही ब्रह्म की ज्योति सत्–चित्–आनंद।''

आध्यात्मिक बनने के लिए नैतिक होना आवश्यक है और सात्विकता नैतिकता की प्रवृत्ति है–

''आध्यात्मिक बनने से पहले , है सात्विक बनना आवश्यक
यदि युक्त गुणों से होना है, सात्विक प्रवृत्ति है आवश्यक।।''

ईश्वर बाहर नहीं हमारे अंदर ही हैं। जब हम ईश्वर को खोजते हैं, तब आडम्बरों का जन्म होता है, लेकिन आत्म को परमात्मा का अंश मानना ही आध्यात्मिक होने की पहली सीढ़ी है–

''आत्मा को परमात्मा मानो, परमात्मा को आत्मा जानो
है पूर्ण अंश में जो आता, अर्जुन तुम इसको पहचानो।।''

सच्ची भक्ति सभी के प्रति प्रेम सराबोर होने का भाव है। सबको अपना मानते हुए उनके कल्याण की कामना ही सच्ची भक्ति है। वर्तमान भक्ति के साथ इसकी तुलना की जाय तो भक्ति की वास्तविकता तार–तार होती नजर आएगी। सच्ची भक्ति का आदर्श रूप देखिए–

''होता जब प्रेम सभी के प्रति, तब भक्ति पूर्ण बन जाती है
पल–पल सेवा की इच्छा तब, मन को प्रेरित कर जाती है।''

गीता का मुख्य ध्येय कर्म की प्रधानता है। कर्म करते हुए परिणाम को चिंता न करना ही उसका प्रमुख संदेश है। परिणाम की इच्छा ही दुख का कारण है। इसी को निष्काम कर्म माना गया है। यह अपेक्षा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में की जाती है। यही गीता का ध्येय वाक्य है। वर्तमान मानव जीवन इस ध्येय वाक्य से कितना दूर है?प्रत्येक व्यक्ति अपने स्तर पर कामना से ओत–प्रोत है, जिसके परिणाम हमारे सामने है। 'कुरुक्षेत्र गाथा' गीता के इस सिद्धांत को आत्मसात करते हुए आगे बढ़ता है–

''कर्म करें अनवरत किन्तु परिणाम न अंतिम ध्येय कभी हो
जनहित जन कल्याण हमेशा, पार्थ! कर्म का प्रेय सदा हो।''

परिणाम की चाह न करते हुए अपने कर्मों को ईश्वर को समर्पित कर देना या उन्हीं का काम समझकर करने का संकल्प ही जीवन की उच्चतम अवस्था है और इसी अवस्था से सारे विकार समाप्त हो जाते हैं। व्यक्ति की आत्मा मानवता से भर उठती है। वह कभी भी न अपने मार्ग से भटकता है और न ही अंधेरे से भ्रमित होता है–

''है छोड़ दिया जिसने खुद को ईश्वर की अपनी इच्छा पर
वे हुए न भ्रमित अंधेरे में वे कभी न भटके हैं पग पर।''

निष्कर्षत: 'कुरुक्षेत्र गाथा' व्यक्ति के आंतरिक विकास की यात्रा है। यह यात्रा व्यक्ति को वर्तमान के चकाचौंध और बटोर की वृत्ति से उपजे संत्रास एवं विषाद से मुक्ति दिखाते हुए जीवन के सफर में वास्तविक आनंद के साथ अग्रसर होने में मदद करती है। इसमें योग के माध्यम से भक्ति और अध्यात्म के मणिकांचन सुयोग को प्रस्तुत करते हुए मानवता को स्थापित किया गया है। वह मानवता व्यक्ति, राष्ट्र से होते हुए विश्वव्यापी हो उठती है। यह गीता का अनुवाद नहीं, बल्कि उसके सिद्धांतों को सरलता से व्यक्त करते हुए वर्तमान से जुड़ने में सहायक है। भाषा की सरलता और सहजता के कारण पाठकों तक आसानी से पहुँचने में सफल कृति है। यह कृति व्यक्ति को जीवन के विविध अवसादों से दूर ले जाते हुए मनुष्य के असली ध्येय का मार्ग प्रशस्त करती है। निश्चित ही यह सफल और सराहनीय प्रयास है और इसको पाठकों द्वारा सराहा जाएगा। ऐसा मेरा विश्वास है।

समीक्षा

दिनकर के काव्य में सर्प–बिम्ब

डॉ. चुम्मन प्रसाद
कौशाम्बी (उ.प्र.)
मो.–7767041429

समग्र आधुनिक काव्य में सर्प–बिम्ब का सबसे अधिक प्रयोग राष्ट्रकवि दिनकर ने किया है। उनकी अबतक की सभी कविताओं में सर्प–बिम्बों की कुल संख्या 111 है। 'रेणुका' में 5, 'हुंकार' में 7, 'सामधेनी' में 7, 'कुरुक्षेत्र' में 13, 'बापू' में 7, 'धूप–छाँह' में 1, 'रश्मिरथी' में 12, 'नीलकुसुम' में 11, 'नये सुभाषित' में 1, 'सीपी और शंख' में 4, 'उर्वशी' में 8, 'परशुराम की प्रतीक्षा' में 15, 'कोयला और कवित्व' में 1, 'आत्मा की आँखें' में 2 और 'मृत्ति–तिलक' में 7 सर्प बिम्ब हैं। सबसे अधिक सर्पबिम्ब 'रश्मिरथी' में है और सबसे कम 'धूप–छाँह, नये सुभाषित और कोयला और कवित्व में है। 'रसवंती' और द्वंद्वगीत में एक भी सर्प–बिम्ब नहीं है।

साँप : मानवीय जिह्मताओं का प्रतीक–

साँप एक एम्बिवैलेंट (ाउइपअंसमदज) का प्रतीक है। यह सामूहिक अवचेतन के मुख्य विचारों को व्यक्त करनेवाला प्रतीक है। ईसाई धर्मशास्त्रों में यह मनुष्य को लुब्ध कर पाप की ओर ढकेलनेवाला माना गया है। यह सब दिन से मनुष्य के भय का कारण रहा है। जीवन में जहाँ कहीं छल है, प्रपंच है, धोखा है, फरेब है, विश्वासघात है, वहाँ–वहाँ साँप है। आस्तीन का साँप तो मुहावरा ही बन गया है। यह साँप दुष्टता, ईर्ष्या, रोष, संहार, छल–छद्म आदि का प्रतीक माना जाता है। दिनकर की कविताओं में सर्पबिम्ब का अधिकांश प्रयोग इसी रूढ़िगत अर्थ में हुआ है।

यथा–

1. व्याकुल तेरे सुत तड़प रहे
इस रहे चतुर्दिक विविध व्याल। (रेणुका, 'हिमालय' कविता)
2. गूँज रही संस्कृति मंडप में
भीषण फणियों की फुफकारें,
गढ़े ही भाई जाते हैं
भाई के वध–हित तलवारें। (रेणुका, 'कस्मै देवाय?' कविता)
3. भूखी बाघिन की घात–क्रूर
आहत भुजंगिनी के दंशन। (हुकार 'विपथगा' कविता)
4. आज कठिन नरमेघ! सभ्यता ने
ये क्या विषधर पाले। (सामधेनी 'अतीत के द्वार' कविता)
5. यह नागिन स्वदेश–हृदय पर
गरल उड़ेल लोटनेवाली। (सामधेनी 'दिल्ली और मास्को' कविता)
6. क्षमा शोभती उस भुजंग को जिसके पास गरल हो। 'कुरुक्षेत्र'
7. उठता कराल हो फणीश फुफकार है। (कुरुक्षेत्र)
8. बचो युधिष्ठिर! यह नागिन का विष भरा दंशन है। (कुरुक्षेत्र)
9. थी परस्व ग्रासिनी भुजंगिनी,
न वह जो जली समर में। (कुरुक्षेत्र)
10. कहीं प्रतिशोध का कोई भुजंगम पालता था। (कुरुक्षेत्र)
11. प्राण में अब भी कहीं फुफकार भरता नाग। (कुरुक्षेत्र)
12. विष के मतवाले कुटिल नाग। (बापू)
13. पर तुम साँपों से भी कराल
काँटों से भी काले निकले। (बापू)
14. नागिन होगी वह, नारी नहीं। (रश्मिरथी)
15. सर्पिणी परम विकराली थी। (रश्मिरथी)
16. मानवी रूप में विकट साँपिनी हूँ मैं। (रश्मिरथी)
17. वय अधिक आज तक व्यालों के
पालन पोषण में बीता है। (रश्मिरथी)
18. पुरुष की बुद्धि गौरव खो चुकी है,
सहेली सर्पिणी की हो चुकी है। (रश्मिरथी)
19. ये नर भुजंग मानवता का
पथ कठिन बहुत कर देते हैं। (रश्मिरथी)
20. ओ शंका के व्याल! मत देख
मेरे श्याम बदन को। (नीलकुसुम 'व्याल विजय' कविता)
21. विषधारी! मत डोल कि मेरा आसन बहुत कड़ा है
(नीलकुसुम 'व्याल विजय' कविता)
22. कृष्ण आज लघुता में भी साँपों से बहुत बड़ा है।
(नीलकुसुम 'व्याल विजय' कविता)
23. पर्वत पर से उतर रहा है महाभयानक व्याल
(परशुराम की प्रतीक्षा)
24. सुनती हो नागिनी! समझती हो इस स्वर को?
(परशुराम की प्रतीक्षा)
25. डँसे एक को सर्प अगर तो दस मिलकर हँसते हैं।
(परशुराम की प्रतीक्षा)
26. श्रम पिला पालता स्वार्थ–व्याल। (मृत्ति–तिलक)

सांस्कृति क्षयिष्णुता से संघर्ष करनेवाला कवि मनुष्य के कलुष पर झुँझलाता है। मनुष्य की विरूपता उसे स्वीकार्य नहीं है। इसीलिए ईर्ष्या, रोष, विनाश, छल–छद्म, लोभ, घृणा, विश्वासघात, शोषण–दोहन आदि को वह सर्प–बिम्ब के द्वारा व्यक्त करता है। सर्प उत्तेजना से रहित (ब्वसक इसववकमक) होता है। जिह्वा इसकी बीच से फटी होती है। उस मनुष्य के उस व्यक्तित्व का प्रतीक है, जो वैयक्तिक और सामाजिक जीवन में एक ही भाषा नहीं बोलता है। आधुनिक जीवन की विडम्बना यह है कि मनुष्य न तो क्रिया से सिद्ध है, न वाणी से शुद्ध। दिनकर ने सर्पबिम्ब द्वारा इस बात को बड़ी सफाई से कहा है–

''माया है नाम भ्रमित उस धी का
बीचोबीच सर्प–सी जिसकी जिह्वा फटी हुई है
एक जीभ से जो कहती कुछ सुख अर्जित करने को
और दूसरी से बाकी का वर्जन सिखलाती है।''1

सर्प की द्विधा–विभक्त जिह्वा का यह विलक्षण प्रयोग राष्ट्रकवि दिनकर ने मानव की चारित्रिक क्षयिष्णुता के प्रसंग में किया है।

व्याल–विजय : एक चरम परिणति–

सर्प को इस रूप में देखने की दृष्टि परम्परायुक्त कही जाएगी। दिनकर काव्य में इस दृष्टि की चरम परिणति 'व्याल–विजय' कविता में मिलती है। यह व्याल मनुष्य का कलुष है, उसका पाप है। इस युग में भी सार्पिक मनोवृत्तियों का अभाव नहीं है। मनुष्य प्रत्येक युग में, प्रत्येक देश में अपने ही कलुष से संघर्ष करता आया है। मनुष्य की जय–यात्रा देवत्व की ओर हो रही है। ये व्याल यानी मनुष्य की अपनी ही जिह्मताएँ उसकी बाधक हैं। इसलिए 'व्याल–विजय' में कवि विषधर को फण तानने के लिए कहता है, जिसपर खड़ा होकर वह कृष्ण की तरह सुरुचि और सौंदर्यबोध की बाँसुरी बजा सके। 'कालिया दह' पशुता का पुंजीभूत कोश है। मनुष्य को उससे बाहर निकलना ही है। अपने ही विष से मत्त यह साँप अपने ही भाई को नहीं पहचानता है। मनुष्य के प्रत्येक कलुष पर अमृत छिड़कनेवाला कवि साँपों की पीठों पर कुसुम लादने आया है। कृष्ण आज का मनुष्य है, जो अपनी ही जिह्मताओं के कारण लघुता को प्राप्त हुआ है, फिर भी वह साँपों से अभी भी श्रेष्ठ है। मनुष्यता मरी नहीं है।

फिर भी ''कल्याण तबतक नहीं दीखता, जबतक ये साँप, युग के ये साँप, समाज के साँप, व्यक्ति के भीतर के ये साँप दमित न हो जाएँ। इसलिए कृष्ण जैसा कर्मठ चाहिए और बाँसुरी जैसा अहिंसात्मक माध्यम।''2

व्याल विजय कविता इसी विराट पृष्ठभूमि पर लिखी गयी है। यह कविता दिनकर काव्य की आकस्मिक घटना नहीं है, प्रत्युत् सांस्कृतिक क्षयिष्णुता और मनुष्य की विरूपता से संघर्षशील काव्य की श्रेष्ठ स्वाभाविक परिणति है।

सर्प : काल का प्रतीक –

सर्प काल का प्रतीक है। यह काल ही है। विष्णु के शेषशायी रूप की पौराणिक परिकल्पना काल की ही परिकल्पना हैं। काल के बिना हमारा अस्तित्व ही संभव नहीं है। काल की अनंतता का यह प्रभावशाली प्रतीक है। पुराणों में यह वर्णन आया है कि शेषनाग के दस हजार मस्तक हैं। यह दस सहस्र भी उपलक्षण मात्र हैं। तात्पर्य यह है कि इसके असंख्य मस्तक हैं। यह शेष, जो कि काल का प्रतिरूप है, असंख्य रूपों में सृष्टि में विकास और संकोच का काम करता रहता है।

यथा–

त्वया घृतोऽयं धरणीं विभत्रित चराचरंविश्वमनन्तमूर्ते।
कृतादिर्भेदैरजकालरूपो निमेषपूर्वो जगदेतदत्सि।।3

यानी हे अनंत रूपवाले! तुम जिस धरती को धारण किये रहते हो, वह चराचर विश्व को धारण किये रहती है। हे अज! निमेष (पल) से लेकर कृत (सत्य) युग आदि विभागयुक्त कालरूप में इस संसार को खाते रहते हो।

सर्प का काल के प्रतीक के रूप में दिनकर ने अच्छा उपयोग किया है। दिनकर शेषनाग को काल के प्रतीक के रूप में ही ग्रहण करते हैं; यथा–

1. जा रहा बीतता होम लगन
 करवट चुका ले शेष व्याल।(हुंकार, 'चाह एक' कविता)
2. ओ शेषफण शेष! सजग हो
 थामो धरा, धरो भूधर
 मेघरन्ध्र में बजी रागिनी
 टूट न पड़े कहीं अम्बर।(हुंकार, 'मेघ–रन्ध्र में बजी रागिनी' कविता)

शेष को अशेष फण कहने का तात्पर्य है कि काल के चरण अनंत हैं। शेष से भिन्न, केवल सर्प को भी दिनकर ने काल के ही रूप में देखा है–

1. मेरे मस्तक के छत्र–मुकुट
 वसु काल सर्पिणी के शतफन।(हुंकार, 'विपथगा' कविता)
2. जाने, किस दिन फुफकार उठे,
 पददलित काल सर्पों के फन।(हुंकार, 'विपथगा' कविता)
3. वह काल–सर्पिणी की जिह्वा
 वह अटल मृत्यु की सगी स्वसा।(रश्मिरथी, सर्ग 6)
4. हो गया तिरोहित काल–नाग (सीपी और शंख)

इन सभी उदाहरणों में सर्प काल का प्रतीक है, साथ ही मृत्यु का प्रतिरूप भी।

उरोबोरॉस अंतता का साँप –

पश्चिम में उरोबोरॉस की कथा में सर्प को इसी काल का प्रतीक माना गया है। उरोबोरॉस कुंडली मारे साँप है, अपने मुँह से अपनी ही पूँछ को काट रहा है। जीवन की चरम वास्तविकता तो यह है कि बूढ़ा होने के क्रम में व्यक्ति समूह–मन (ब्वससमबजपअम च्लबीम) में बूँद–बूँद करके शनैः शनैः पिघलने लगता है। यह वही समूह मन है, जिससे बड़े आयास द्वारा वह शिशु के रूप में निकला था। इसी तरह मानव जीवन का चक्र अर्थपूर्ण सामंजस्य में परिणति पाता है और प्रारंभ और अंत एक दूसरे से मिल जाते हैं। यही घटना अनादिकाल से उरोबोरॉस की कथा के द्वारा व्यक्त की जाती है। यह अनंतता का साँप है। 'उर्वशी' के तृतीय अंक में पुरुरवा एक जगह उद्वेग में कहता है–

''सामने टिकते नहीं वनराज पर्वत डोलते हैं
काँपता है कुण्डली मारे समय का व्याल
मेरी बाँह में मारुत गरुड़ गजराज का बल है।''4

काम क्षुधा का प्रतीक–

जो सर्प मृत्यु–भय का कारण है, स्वयं मृत्यु ही है, जो सृष्टि के प्रवर्तन का भी कारण माना गया है यानी सृष्टि का प्रवर्तन और समावर्तन करनेवाली शक्ति काल ही है। चूँकि यह सर्प सृष्टि का प्रवर्तन करनेवाली शक्ति का भी प्रतीक है, इसलिए मनुष्य की काम भावना का भी प्रतीक बन जाता है। फ्रायड का कहना है कि मृत्यु की ध्रुवीय भावना (च्वसंत प्देजपदबज) काम है। आज का मनोविज्ञान यह कहता है कि स्वप्न में कभी–कभी कोई वस्तु अपने विपरीत भावना को व्यक्त करती है। युग ने तो स्पष्ट कहा है कि स्वप्न ने सर्प व्यक्ति की शिश्न–भावना के प्रतीक होते हैं। इस प्रकार मृत्यु का प्रतीक काम के प्रतीक में रूपांतरित हो गया है।

'नीलकुसुम' में संगृहीत 'स्वप्न और सत्य' शीर्षक कविता को दिनकर काव्य में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन का बिन्दु मानना चाहिए। इसी कविता में उन्होंने पहली बार सर्प को फ्रायडवादी प्रतीक के रूप में उपस्थित किया है–

''हृदय में सुगबुगा उठती जुही के फूल–सी कविता
लहू में रेंगने लगते हजारों साँप सोने के।''5

यह साँप काम–क्षुधा का प्रतीक है। 'सोने' विशेषण को जोड़कर दिनकर ने इस बिम्ब को और प्रभावशाली बना दिया है। 'सोना' कामना का प्रतीक है। कामिनी के साथ कंचन का अपरिहार्य संबंध है। यही बिम्ब 'उर्वशी' में हू–ब–हू आया है–

'रेंगने लगते हैं सहस्रों साँप के रुधिर में
चेतना रस की लहर में डूब जाती है।''6

उद्दाम वासना से प्रेरित पुरुष की रुधिर में सोने के सहस्रों साँप का रेंगना कला की दृष्टि से अनमोल है। उसी प्रकार 'सीपी और शंख' में भी साँप को वासना का प्रतीक माना गया है–

''मगर इतना करो
लेलिह सरीसृप वासना की गाँठ मत खोलो।''7

आज का मनोविज्ञान इसका साक्षी है कि वासना का साँप (दाम वि च्ेपवद) जो कि मनुष्य में अपृथक्कृत सहजात वृत्ति का प्रतीक है, हृदय से निकलकर अवचेतन के समुद्र पर तैरता रहता है। समय आधुनिक काव्य में कदाचित् दिनकर एकमात्र कवि है, जिन्होंने सर्पबिम्ब का प्रयोग काम–क्षुधा के प्रतीक के रूप में किया है।

कविता में शब्द अनुभूति के ताप से ज्योतित रहते हैं। ठीक इसके विपरीत कोष के शब्द निर्जीव और निष्प्राण होते हैं। कवि किसी भी शब्द को जब चुनता है, तब उसकी आभ्यांतरिक चेतना को वह परखकर ही ऐसा करता है। इसलिए कविताओं में कोई भी शब्द पर्यायवाची नहीं होता है और उसी से उसकी अर्थवत्ता खुलती है। दिनकर सर्प के लिए विभिन्न पर्यायवाची शब्दों का साभिप्राय प्रयोग करते हैं। इसलिए सही माने में कोई भी शब्द पर्यायवाची नहीं रह गया है।

1. काल के लिए–	व्याल, सर्पिणी, सर्प, नाग
2. प्रतिशोध–	भुजंग
3. लोभ–	नागिनी
4. कुटिलता–	व्याल, नाग
5. शंका–	व्याल
6. बोझ–	अजगर
7. परस्वग्रासिनी–	भुजंगिनी, व्याली

8.डँसना,फुफकार मारना– व्याल, फणी, नाग
9.सरकना– भुजंगिनी, भुजंग, साँप
10.रेंगना– साँप
11.चुसना– साँप
12.लटों से उपमा नागिन
13.यौवन के सादृश्य– नाग

'भुजंग' में जो प्रबलता है, दबंगपन है, वह प्रतिशोध के लिए उपयुक्त है। 'व्याल' शंका की तरह टेढ़ा है। बोझ के लिए अजगर के सिवा कोई दूसरा शब्द आ ही नहीं सकता है। अजगर भी भारी होता है। 'उर्वशी' में अजगर का ही सुंदर बिम्ब दिनकर ने सृजित किया है–

''यही काल अजगर समान प्राणों पर बैठ गया था।''8

साँप शब्द की पिच्छिलता 'रेंगना' ध्वनित करता है। रेंग साँप ही सकता है, व्याल, भुजंग, सर्प या अजगर नहीं। इस प्रकार दिनकर शब्द की आभ्यांतरिक चेतना से पूर्ण परिचित दिख पड़ते हैं।

संदर्भ–

1.उर्वशी, पृ.78
2. हिन्दी काव्य : व्यावहारिक आलोचना, 'व्याल विजय' पर प्रो. जगदीश नारायण चौबे के निबंध से उद्धृत (गंगा पुस्तकालय,पटना)
3.विष्णु पुराण, 5/9/29
4.उर्वशी, पृ.53
5.नीलकुसुम, पृ.14
6.उर्वशी, पृ.52
7.सीपी और शंख, पृ.42
8.उर्वशी, पृ.44

कविता

अंजना वर्मा
मुजफ्फरपुर
9572991995

तुम कुछ नहीं हो

तुम कुछ नहीं हो
पहली किरण फूटने के साथ ही
शुरू होता है उसका दिन
आकाश में सूर्य के आने के साथ
उसकी रसोई हो जाती है तैयार
ताकि सबको मिल जाए समय पर आहार
फिर निकलती है वह कई घरों के लिए
किचन को साफ–सुथरा करते
बर्तन माँजते
झाड़ू पोंछा करते
निकल जाता है उसका दिन
बिना नागा
समय पर सबके यहाँ पहुँच जाती है वह
इसी तरह कटते हैं
उसके दिन महीने और वर्ष
इसी तरह जिंदगी का
एक लंबा समय वह तय कर चुकी है
फिर भी उसे सुनना पड़ता है
तुम कुछ नहीं हो
यह सुनकर भी
वह सारी जिम्मेवारियाँ उठाती है
और सारे खर्च भी
जिसमें शामिल होता है
पति के दारू का खर्च भी
वह स्त्री है
इसलिए ऐसा कर सकती है

कविता

समीर उपाध्याय
जिला सुरेन्द्रनगर (गुजरात)
मो. 9265717398

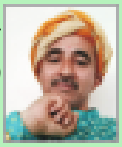

मायूस क्यों होता है

आगे बढ़ना ही है तो
मदमस्त हाथी बन जाओ
कुछ लोगों को छोड़कर बाकी सब
कुत्ते की तरह भौंकते रहेंगे
मायूस क्यों होता है मनवा
अरे! कोई फर्क नहीं पड़ता
आगे बढ़ना ही है तो
उफनते हुए सागर बन जाओ
कुछ लोगों को छोड़कर बाकी सब
लहरों को रोकने का यत्न करते रहेंगे
मायूस क्यों होता है मनवा
अरे! कोई फर्क नहीं पड़ता

आगे बढ़ना ही है तो
अडिग हिमालय बन जाओ
कुछ लोगों को छोड़कर बाकी सब
नींव को हिलाने का यत्न करते रहेंगे
मायूस क्यों होता है मनवा
अरे! कोई फर्क नहीं पड़ता

आगे बढ़ना ही है तो
निर्मल चन्द्रमा बन जाओ
कुछ लोगों को छोड़कर बाकी सब
कालिख लगाने का यत्न करते रहेंगे
मायूस क्यों होता है मनवा
अरे! कोई फर्क नहीं पड़ता।

गीता गुप्ता 'मन'
लखनऊ, उ.प्र.
मो. 9453993776

भ्रम

असंतोष का पर्वत ऊँचा
विजय पताका लहराऊँ
पा लूँगा जीवन सुख सारे
सोच स्वयं ही हर्षाऊँ

जीवन से कब जाती प्यारे
सुख पाने की ये आशा
दुखों से पाये छुटकारा
मन की बढ़ती अभिलाषा

मरुस्थल में दिनकर आभा से
हुए यथा ये सलिल दर्शन
पथिक चल रहा मीलों से
करने जल से तन मन अर्चन

है ज्ञात सभी को मृगजल है
भ्रम ने ये माया जाल बना
प्राणी सब भ्रम के वशीभूत
किसने कब क्या क्या कहा सुना

हो गर्वित नर अपने प्रताप
पर मिथ्या दम्भ दिखाता है
दूर क्षितिज ये धरा गगन को
एकसार कर जाता है

दुखों को भूल सभी प्राणी
सुख के भ्रम में ही जकड़े हैं
उलझ रहते इनके फंदों में
नित आत्म मोह से अकड़े हैं।

समीक्षा

मुक्तछंद के प्रवर्तक महाकवि : निराला

डॉ. नलिनी श्रीवास्तव 'शिवायन'
भिलाई, मध्य प्रदेश
मो. 9752606036

बसंत ऋतु निराला का विशेष प्रिय ऋतु है। बसंत पंचमी निराला का जन्म दिवस भी है।

''सखी बसंत आया
भरा हर्ष वन के मन
नव उत्कर्ष छाया।''

निराला की सृजनधर्मिता आज भी प्रासंगिक है, क्योंकि उसमें जीवन के यथार्थ अनुभूतियों का सजीव चित्रांकन हमें दिखाई देता है। निराला ने साहित्य के सभी विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई है। मुक्तछंद के निरालाजी हिन्दी साहित्य जगत के प्रवर्तक माने जाते हैं। पत्रकारिता के क्षेत्र में निराला की लेखनी बेबाक होकर अपनी विचारधारा को प्रस्तुत करने में कहीं पर भी विचलित नहीं हुई हैं। कथा–साहित्य में आपकी लेखनी 'चतुरी चमार', 'बिल्लेसुर बकरिहा', 'कुल्ली भाट', 'देवी', 'कला की रूपरेखा' में कहानी के सभी तत्वों का समावेश दिखाई देता है। आपकी कहानियाँ हिन्दी साहित्य में कथा–संसार का प्रतिनिधित्व करती है।

'राम की शक्तिपूजा' पंडित सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की एक अनुपम कृति है। छायावाद के चार सशक्त स्तंभ हैं–प्रसाद, पंत, महादेवी और निराला। निरालाजी छायावादी कवि है, परन्तु आपकी परिकल्पना से भोगा हुआ यथार्थ को एक पल के लिए भी विस्मृत नहीं किया है। यही कारण है कि आज आप 'महाप्राण' निराला कहलाते हैं।

श्रीसूर्यकांत त्रिपाठी को 'निराला' बनाने का श्रेय उनकी पत्नी मनोहरा देवी को है। जिस प्रकार कालिदास को विद्योतमा ने बनाया और तुलसीदास को रत्नावली ने। निरालाजी का कथानक भी उन्हीं के समान बहुत कुछ मिलता जुलता है। 'कुल्ली भाट' में इन्होंने स्वयं लिखा है–एक रात इन्होंने श्रीमतीजी से पूछा–'तुम हिन्दी–हिन्दी कहती हो, हिन्दी में क्या है?' 'जब तुम्हें आती ही नहीं, तब कुछ नहीं है'–उन्होंने कहा। निराला को अपनी हार इन शब्दों में स्वीकार करनी पड़ी कि हिन्दी हमें नहीं आती।

श्रीसूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' जी की खड़ी बोली से परिचय ही नहीं था। निराला जी की धर्मपत्नी ने महावीर प्रसाद द्विवेदी, अयोध्या सिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त आदि बीसियों कवियों के नाम गिना दिये, निरालाजी अपनी पत्नी के ज्ञान पर स्तब्ध रह गये और मन–ही–मन प्रतिज्ञा की कि मैं भी हिन्दी पढ़ूँगा।

निरालाजी महिषादल के जिस क्षेत्र में रहते थे, उसमें कोई हिन्दी जाननेवाला नहीं था। उस समय हिन्दी में दो विशिष्ट पत्रिकाएँ थीं–एक 'सरस्वती' और दूसरी 'मर्यादा'। दोनों पत्रिकाओं को मँगाकर निरालाजी स्वाध्याय करने लगे। रात के दो–तीन बजे तक सरस्वती का एक–एक संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी व्याकरण के सहारे समझने का प्रयत्न करने लगे। अनवरत साधना, एकांत निष्ठा, लगन और परिश्रम तथा उत्साह के बल पर इन्होंने हिन्दी का ज्ञान प्राप्त किया। निराला का दृढ़संकल्प ही आज उन्हें हिन्दी साहित्य का चमकता हुआ सितारा बना दिया।

डॉ. रामविलास शर्मा ने 'रागविराग' की भूमिका में निरालाजी की काव्य–साधना की तीन चरणों में उल्लेख किया है। राम की शक्तिपूजा से 1936 में इस काव्य–साधना का पहला चरण समाप्त होता है। नये पत्ते में संगृहीत कविताएँ सन् 1946 में दूसरा चरण और उसके बाद 1961 तक लिखी गई कविताएँ तीसरे चरण की हैं। इन तीनों चरणों में निराला की विचारधारा का भाव बोध में कोई भौतिक अंतर नहीं हुआ है।

निरालाजी अपनी स्वाभाविक सृजनात्मक गति के साथ किसी नये आविष्कार का दावा कहीं नहीं करते हैं। लिखनेवालों के लिए भाषा और भावों के संस्कार से उन्होंने यह सुविधा कर दी है कि कविता के एक आधुनिक अंग की भाषा की लीक पकड़ सकेंगे। कविता पढ़कर ज्ञान प्राप्त करना विज्ञप्ति पढ़ने से अच्छा है। यहीं पर निरालाजी ने सबसे अलग कविता के क्षेत्र में मुक्तछंद की नींव डाली।

यह हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि अज्ञेय, शमशेर, मुक्ति बोध एक दूसरे से अलग–अलग विचारधारा के रहते हुए भी निराला के कविकर्म से प्रेरणा ग्रहण की है। यह निराला के पूर्ण समर्पित कवि जीवन की साधना का प्रतिफल है।

आदिकवि महर्षि वाल्मीकि द्वारा लिखित रामायण में राजा राम के क्षत्रिय धर्म और औदात्यपूर्ण संस्कृति का चित्रण है। तुलसीदासकृत रामचरितमानस में मर्यादा पुरुषोत्तम राम भारतीय इतिहास की सर्वाधिक चर्चित कथा है। इसी परंपरा में निराला द्वारा प्रणीत राम की शक्तिपूजा आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में, जीवन संघर्ष के उतार–चढ़ाव, आशा–निराशा के पल–प्रतिपल मन की संवेदनाओं का सुंदर सजीव रूप का चित्रण किया गया है। भाषा विषय के अनुकूल होकर संस्कृतनिष्ठ होकर भी अर्थ को समागम करने में कहीं पर भी दुरुहता नजर नहीं आती है। एक आलोचक ने राम की शक्तिपूजा के संबंध में यहाँ तक कह दिया है कि इस काव्य के नायक राम के चरित्रांकन में कवि ने उपचेतना में ही अपने व्यक्तित्व को भी संग्रथित कर दिया है। जैसी वीरता, उदारता तथा करुणा का भाव निराला के व्यक्तित्व में रही है, वैसे ही उन्होंने राम के व्यक्तित्व में अंकित कर दी है और तदनुसार ही कविता में रस–व्यंजना भी परिलक्षित होती है।

''रवि हुआ अस्त : ज्योति के पत्र पर लिखा अमर
रह गया राम रावण का अपराजेय समर।''

राम की शक्तिपूजा में राम–रावण युद्ध का सजीव एवं भव्य वर्णन किया गया है। यह वर्णन हिन्दी साहित्य के वीरगाथा काव्य के वीर रसात्मक वर्णनों का सहज ही याद दिला देता है। युद्धस्थल को सजीव बनाने में निराला का प्रयास स्पृहणीय है। काव्य में जिस नाद–व्यंजना की आवश्यकता होती है, उसे संयुक्ताक्षरों 'ट' वर्ग के अक्षरों महाप्राण ध्वनियों श्रुत्यानुप्रासों द्वारा सुंदर ढंग से प्रतिबिम्बित करने का प्रयास किया गया है। यही कारण है कि भाषा में ओज–गुण की दीप्ति सहज ही दर्शनीय है–

''है अमाँ निशा : उगलता गगन घन अंधकार
खो रहा दिशा का ज्ञान स्तब्ध है पवन चार
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल
भूधर ज्यों ध्यान मग्न केवल जलती मशाल।''

लंकेश रावण को महाशक्ति का वरदान है। यही कारण है कि राम के समस्त शस्त्र विफल हुए जा रहे हैं। यह दृश्य राम को निराशा के भँवर में डूबने–उतरने जैसी हालत हो गई है। जामवन्त ने कहा कि तपस्या में अद्‌भुत शक्ति है। आप प्रयास करें कि महाशक्ति आपके वश में हों। इस मंत्रणा के अवसर पर निराला का भाव अत्यधिक सजीव है। राम तपसिद्धि के अंतिम कगार पर पहुँचकर भी किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहे हैं। आसन पूजा के क्षण में छोड़ते नहीं बन रहा है। अंतिम कमल–फूल का न मिलना राम को व्यथित किये जा रहा

है। रावण आदिशक्ति देवी के वरदान से गर्वोन्मत हो रहा है। इधर राम को निराशा और अवसाद में घिरे मानस पटल में बार–बार सीता की छवि दिखाई दे रही है। राजा जनक का उपवन सीता की प्रथम दृष्टि की झलक की यादें मन को उत्साहित करने के सुंदर सफल भाव संयोजन निराला की लेखनी से मुखरित हुई है। सीता की यादें राम को रोमांचित कर जाती है। दुबारा शिवधनुष तोड़ने की शक्ति की यादों से प्रफुल्लित तन–मन पुलकित हो जाता है। सीता की यादें राम की आशा– विश्वासरूपी मुस्कान में परिवर्तित होने लगती है। हृदय में उठती उमंगें विश्वविजय की भावना से आप्लावित होने लगी। मन की संवेदनाएँ भाव अतिरेक के कारण राम के नेत्रों से मोती जैसे आँसू टपक पड़ते हैं। तभी माता कौशल्या की यादें सजीव हो उठती है कि माताजी उन्हें कमललोचन कहा करती थी तो क्यों न कमल के स्थान पर एक लोचन ही समर्पित कर तप को पूर्ण कर लूँ।

इसी बीच राम की उदासी व निराशा को देख विभीषण का मन आतंकित हो जाता है। क्या करें, अब तो रावण की सहायता करने स्वयं महाशक्ति अवतरित हो गयी हैं। जिधर अन्याय उधर शक्ति है। निराला का भाव तात्कालिक परिवेश का जीवंत वर्णन करने में सफल है।

जामवन्त की विश्वासभरी वाणी राम को शक्ति की याद दिलाकर यह कहलाना कवि की बुद्धिचातुर्य का सुंदर रूप है। हे रघुनंदन! जबतक आप महाशक्ति को सिद्ध न कर लें, तबतक युद्ध से विरत हो जाइए। जामवन्त का यह कहना कि तामसी शक्ति की अपेक्षा सात्विकी शक्ति कहीं अधिक प्रभावशाली होती है। जामवन्त की सलाह से राम तुरंत आदिशक्ति दुर्गा पर अपना कमलनयन चढ़ाने को तैयार होते हैं। कवि निराला का यह भाव अत्यन्त मार्मिक व हृदयस्पर्शी है।

''कहकर देखा तूणीर ब्रह्मशर रहा झलक
ले लिया हस्त लकलक करता वह महाफलक
ले अस्त्र वाम दक्षिण कर दक्षिण लोचन
ले अर्पित करने को उद्दत हो गये सुमन।''

गोस्वामी तुलसीदासजी हृदयरूपी सिन्धु में उत्पन्न होनेवाली मुक्तिरूपी मुक्ता प्रदान करनेवाली सीप कहा है।

''हृदय सिंधु मति सीप समाना
स्वाति शारदा कहहिं सुजाना
यह स्वाति ही यहाँ निराला की स्मृति है।''

प्रसाद के 'आँसू' काव्य में प्रयुक्त आँसू छंद की भाँति राम की शक्तिपूजा छंद कह सकते हैं। महाशक्ति के मातृपक्ष का अतीव सुंदर वर्णन करने में निराला की कीर्ति अक्षय है।

''होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन
कह, महाशक्ति राम की, बदन में हुई लीन।''

साहित्य निराला के रोम–रोम में रचा–बसा है। साहित्य की साधना निराला के लिए एक अनुष्ठान था, एक पूजा थी। सर्वस्व समर्पण की भावना निराला की रग–रग में समाहित थी। निरालाजी की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि जीवन के सभी रंगों की प्रतिक्रिया पर उनकी लेखनी उन्मुक्त होकर प्रवाहित हुई है। कटु जीवन संघर्ष के अनुभवों से लेकर सुख के पलों को सहेजती हुई प्रकृति के अनुपम सौंदर्य राशि की धरा कठोर पर्वत को काटती निर्झरनी की तरह बहती चली है। निरालाजी के दुख–क्लेश के लिए जहाँ यह परिवेश उत्तरदायी है, वहाँ कोई अदृश्य नियति भी मानो उनकी विजय को पराजय में बदल देती है। निराला के ऊपर वैज्ञानिक युग का पूरा–पूरा प्रभाव परिलक्षित है। उन्हें रूढ़िवादिता में बिल्कुल विश्वास नहीं था। इसीलिए निराला एक क्रांतिकारी कवि भी हैं।

रामविलास शर्मा जी लिखे हैं–''निराला के तराशे हुए विवेक को साधकर रचे हुए गीत हैं; ये भावोद्‌गार मात्र नहीं हैं, उनमें जल की तरलता नहीं, हीरे की सी कठोरता और भीतरी दमक है।''

'सरोज स्मृति' पुत्री के निधन का प्रसंग लेकर कथानक का सृजन किया गया है। सरोज निराला की एकमात्र कन्या थी। सवा अठारह वर्ष की उम्र में एक करुण परिस्थिति में उसका अवसान हुआ। सरोज को शिशुसंसार में आए कुछ सवा वर्ष ही हुए थे कि स्नेहमयी जननी का स्नेह संरक्षण से विलग हो गयी। सरोज नानी की गोद में ही पली।

निराला ने सरोज और उसके भाई के मारपीट का चुभता हुआ दृश्य कितना सजीव ढंग से रेखांकित किया है–

''खाई भाई की मार विकल
रोई उत्पल दल दृग छल–छल
चुमकारा फिर उसने विहार
करने को लेकर साथ चला
तु गहकर पली हाथ चपला।''

प्रारंभ में निरालाजी मुक्तछंद की रचना करते रहे और संपादकगण उन्हें वापस कर देते थे। निरालाजी तत्कालीन संपादकों पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं–

''बैठा प्रांतर में दीर्घ प्रहर
अतीत करना था गुण–गुण कर
सम्पादक के गुण यथाभ्यास
पास की नोंचना घास।''

निरालाजी के दुख–क्लेश के लिए जहाँ यह परिवेश उत्तरदायी है। वहाँ कोई अदृश्य नियति भी मानों उनकी विजय को पराजय में बदल देती है। निराला के ऊपर वैज्ञानिक युग का पूरा–पूरा प्रभाव पड़ा है। उन्हें रूढ़िवादिता में बिल्कुल विश्वास नहीं था। ज्योतिष विद्या से निर्मित निराला की कुंडली में लिखा गया था कि उनका दो विवाह होगा। परन्तु निराला जी ने अपनी कुंडली अबोध लड़की सरोज को दे दी। वह खेल–खेल में कुंडली को टुकड़े–टुकड़े कर डालती है।

अपनी कन्या सरोज के तारुण्य का वर्णन कर निरालाजी ने यह सिद्ध कर दिया कि लोकभूमि से कितने ऊँचे उठे हुए हैं–

''भूमि से कितने ऊँचे उठे हुए हैं
जाना बस पिक बालिका प्रथम
पल अन्य नीड़ में जब आश्रय
होती उड़ने को अपना स्वर
भंग करती ध्वनित मौन संसार।''

कोयल पहले दूसरे के नीड़ में पलती है और जब उड़ने में समर्थ होती है, तब अपने स्वर से सूने प्रदेश को ध्वनिपूर्ण करती हुई उड़ जाती है।

निरालाजी पूर्वजों की बनायी परंपरा का ही अनुसरण क्यों करूँ, इसी मनःस्थिति से एक साहित्यिक नवयुवक विद्वान के साथ सीधे–सादे ढंग से सरोज का विवाह कर देते हैं। उसमें पुरोहितजी का काम भी स्वयं ही कर देते हैं।

निरालाजी ने कहा–दहेज देकर मूर्ख बनने की अभिलाषा मुझमें नहीं है, न ही बारात बुलाकर मिथ्या प्रदर्शन करना चाहता हूँ। अपने कुछ साहित्यिक मित्रवर्ग को ही उन्होंने निमंत्रित किया। लेकिन दो वर्ष बाद ही प्रसव पीड़ा से सरोज का स्वर्गवास हो गया। इससे निरालाजी को गहरी ठेस लगी–

''दुःख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज जो नहीं कही
अपने दुःख के अनुभव पर।''

वज्रपात की कामना करते हैं–

''हो इसी कर्म पर वज्रपात

यदि धर्म रहे नत सदा माथ
इस पथ पर मेरे कार्य सफल
हो भ्रष्ट शीत के से शतदल।''

निरालाजी अपनी कन्या का तर्पण भी एक दार्शनिक विधान के अनुसार करते हैं–

''कन्ये! गत कर्मों का अर्पण कर करता हूँ मैं तेरा तर्पण।''

यहाँ पर कवि ने कर्मशक्ति का त्याग और गीता के अनासक्त योग दोनों रूपों में करुणाा की पृष्ठभूमि पर शृंगार, वात्सल्य और हास्य संवेदनाओं का सृजन किया है।

यूरोप के शोकगीतों में दु:ख और क्षोभ की ऐसी विकट परिणति कहीं नहीं है। किन्तु शेक्सपियर के किंगलियर में है। मृतपुत्री कोर्डिलिया का शव लिये हुए देवता और मनुष्य दोनों को कोसनेवाले किंगलियर और सरोजस्मृति में अपने गत कर्मों से कथा का तर्पण करनेवाले इसी कर्म पर वज्रपात कहकर स्वयं को कोसनेवाले निराला में अद्‌भुत साम्य है।

निराला के क्रुद्ध विक्षुब्ध स्वर लियर की करुण व्याकुल पुकार से मिलता–जुलता है। लियर और निराला में अंतर है। लियर अपने क्षोभ में सारी मानवता को कोसता है। मानवीय गुणों में निराला की आस्था कभी खंडित नहीं हुई है।

अंग्रेजी कवियों ने भी शोक गीत लिखे हैं, लेकिन कवि पिता ने अपनी पुत्री के निधन पर लिखा हो, ऐसा कहीं नहीं लक्षित होता है।

मित्र या प्रियतमा पर लिखे शोकगीत तो हमें कई मिलते हैं। ग्रे का शोकगीत अंग्रेजी साहित्य की एक प्रसिद्ध रचना है। सरोजस्मृति का विषय भी ग्रे के विषय के समान करुण है। इसमें अनुभूतियों की गहराई विशेष रूप से द्रष्टव्य है। निराला के मन का द्वंद्व, शृंगार और वैराग्य को लेकर नहीं, जीवन संघर्ष की सफलता और असफलता को लेकर है।

जीवन के अंतिम दशक में निराला के मन में उल्लास का स्रोत सूखा न था। सूखना तो दूर लगता है, जल और भी निर्मल होता गया। प्रवाह अधिक संयम फिर भी वेगपूर्ण है। निराला अपने विवेकयुक्त मन का पूर्ण परिचय देते हुए इससंसार से विदा हुए।

कविता के भीतर भी जैसा आचार्य नंददुलारे बाजपेयी ने हिन्दी साहित्य की बीसवीं शताब्दी में लिखा है–'जितना प्रसन्न तथा अस्खलित व्यक्तित्व निरालाजी का है, उतना न प्रसाद जी का है, न पंतजी का है।' यह निरालाजी की समुन्नत काव्य साधना का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

गरिमा सक्सेना
बंगलोर कर्नाटक
मो. 7694928448

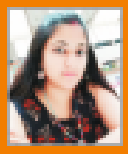

गुड़िया का मुखड़ा उदास है

आज सुबह से
गुड़िया का मुखड़ा
उदास है

अपनी गुड़िया
को सीने से
लिपटायी है
भींच रही
है मुट्ठी अपनी
मन से
घबरायी है

स्मृतियों ने
पहन लिया
डर का लिबास है

छुवन–छुवन
का अंतर
उसको
समझ आ रहा
बारबार
उनका घर
आना
नहीं भा रहा

डर से दूर
कहाँ जाये
डर आसपास है

सोच रही है
मम्मी को
सब कुछ
बतला दूँ
एक चोट
अंदर है
उसको भी
दिखला दूँ

पर क्या बोले
इस घर में वह
बड़ा खास है

बेटी

इस जीवन में
सुबह सुबह
की धूप बेटियाँ होती हैं

शीतल मन्द बयार
उमड़ता अल्हड़पन
अपने संग जीती है
वो सबका ही मन

थकन मिटाती
मीठे जल की कूप
बेटियाँ होती हैं

दर्पण में इतराती
आँखों को हैं पढ़ती
किचन, बाग, आंगन में
खुशियाँ को हैं भरती

सुख दुख सदा फटकती
ऐसी सूप
बेटियाँ होती हैं
ख्याल सभी का रखना
सीखे, सपने रोज गढ़े
धीरे–धीरे रचना से
रचने की ओर बढ़े

नव बसंत का
सुखद सँवरता रूप
बेटियाँ होती हैं

खुद सा रहना

इस दुनिया में
खुद सा रहना
बड़ी बात है

जब बातों में
एक परिधि की
होती टिक–टिक
कापी कट से
जूझ रहे हैं
सारे मौलिक

ऐसे में
अपना कुछ कहना
बड़ी–बड़ी बात है

जहाँ विचारों
से विचार
है लाभ उठाता
परजीवी
बनकर जुबान
सच को झूठलाता

वहाँ असहमत हूँ
यह कहना
बडी बात है

वक्त जहाँ
पर घोषित
करता पक्ष हमारा
अच्छा है
बनकर रह जाना
जहाँ किनारा

वहाँ धार से
लड़कर बढ़ना
बड़ी बात है।

समीक्षा

माखनलाल चतुर्वेदी की काव्य परम्परा

राजेन्द्र परदेशी
फरीदीनगर, लखनऊ
मो. 9415045584

जब भारत देश के पाँवों में दासता की बेड़ियाँ जकड़ी हुई थी और देशभक्त इन बेड़ियों को काटने के लिए प्राणपण से कटिबद्ध थे, राष्ट्रचेता पं. माखनलाल चतुर्वेदी अपनी कविताओं से उनमें ऊर्जा और उष्मा का संचार करने में सतत साधनारत रहे। इसी कारण कवि माखनलाल चतुर्वेदी ने राष्ट्रीय भावना एवं स्वतंत्रता आंदोलन को ऊर्जा प्रदान करनेवाले कवि के रूप में ही अधिक ख्याति प्राप्त किया है। जबकि उनकी कविताओं में शिल्प का भी एक अलग रूप है। विशेषकर प्रतीक और बिम्ब योजना में यह स्पष्ट द्रष्टव्य है।

स्वतंत्रता की देवी की आराधना हेतु उन्होंने बलिदान के लिए तत्पर वीरों को संबोधित करते हुए कहा है–

''चलो पंथी चलो, बलि के द्वार खोलो
प्रलय वीणा पर हृदय की अंगुलियों से
खुल सके तो वह अगर झंकार खोलो।''

माखनलाल चतुर्वेदी को अपने देश के साथ–साथ इसकी प्राकृतिक विशेषताओं से भी आंतरिक लगाव था। उनके कोमल हृदय को प्रकृति ने अपनी माधुरी सुषमा, छवि और हलचल, परिवेश ने भी लुभाया था। उनके भाव जगत में प्रकृति नटी के अनेक मनोमुग्धकारी सजीव से चित्र उतरते, सजते, सँवरते और शब्दरूपों की लालसा से मचलते रहते थे। द्रष्टव्य है एक प्रकृति बिम्ब–

''फुदक–फुदक लहरें सागर की छोरियाँ
पानी की वस्त्रहीन पागल मुँहजोरियाँ
इनका दिलदार चाँद जिस दिन आयेगा
ऊँची उठी किरणों से गले लग जायेगा।''

इसी तरह प्रात्यकाल के सूरज का एक काव्यबिम्ब अवलोकनीय है–

''रवि की प्रजनन कसमसा उठी ऊषा के घर
पंखिनियों ने गाए स्वागत के गीत अमर
र र र र
सूरज की किरणें हिम नभ पर
उतर–उतर चलती है जाड़ा
इन सोने की गायों को
कैसे भाया चांदी का बाड़ा
र र र र
फूलों से देखो कीचड़ का यह नाता
किस ढब गढ़ता है स्वाद सुगंध विधाता।''

डॉ. शंभुनाथ चतुर्वेदी ने इनके बारे में कहा है–एक भारतीय आत्मा ने प्रकृति के विविधवर्णी दृश्य अंकित किये हैं। प्रकृति–चित्रांकन में उनकी शब्द तूलिका ने मनमोहक दृश्य बिम्बों (चोक्षुषबिम्बों) की सृष्टि की है। प्रकाश और अंधकार के द्वंद्वतथा अंततः ज्योत्स्ना के चतुर्दिक प्रसार और विस्तार के साथ ही साथ तमस लघु आकार का होता जाता है। चतुर्वेदी जी ने निशा को एक माता तथा तम को एक शिशु के रूप में चित्रित किया है। इस प्रकार के चित्रांकन में रंग योजना के साथ एक भारतीय माँ का वात्सल्य भाव स्वतः जुड़ जाता है। यह स्वाभाविक सम्बद्धता की प्रकृतिजन्य प्रवृत्ति उन्हें पाश्चात्य बिम्बवादियों एमिली, डिकिंसन एच.डी. और एजरा पाउण्ड को अलग कर देती है। पाश्चात्य बिम्बवादी सृजन द्वारा अपनी काव्य प्रतिभा का केतु फहराना चाहते हैं। जबकि माखनलाल चतुर्वेदी दृश्य सौंदर्य से अभिभूत होकर कुछ पंक्तियाँ अनायास ही काव्य सृजन की आत्म विस्मृति की स्थिति में लिख देते हैं और एक मनमोहक बिम्ब की सृष्टि स्वतः ही हो जाती है।

''तम शिशु गोदी से निशि की रानी
तारों का डर दिखलाकर उसे सुलाती है
मेघों की जब जब बोल उठी साँसें
बिजली–सी तब मैं तड़प–तड़प रह जाती हूँ
जब झरने के लोरियाँ सुनाई पड़ती हैं
रवि की प्रजनन कसमसा उठी उषा के घर
पंखिनियों ने गाए स्वागत के गीत अमर।''

नवयुग का जागरण भी उनका एक प्रमुख काव्योद्देश्य था। इसके लिए वे नया से नया भावनानुकूल बिम्बानुसंधान कर लिया करते थे। उन्होंने नये युग की जागृति के साथ प्रेषण संदेश बिम्ब का अटूट संबंध संस्थापित किया है। जो अद्वितीय है–

''भैरवी का समय है यह
गीत पंछी गा रहे हैं
भानु का आना सितारे
डूबकर समझा रहे हैं।''

युगान्तकारी कवि चतुर्वेदी जी की भाषा भी गंगा–यमुना नर्मदा की तरह प्रवाहमयी थी। वह चित्रमयी संगीतमयी, मानमयी है, समालोचकों को सोचना पड़ता है कि उनकी वर्णों की टकसाल कितनी खरी है, कितनी भरी पूरी है। अनोखी भी है ही। उनके प्रतीकों, काव्यबिम्बों, उपमाओं उनके शब्द विन्यास ने उनकी कमनीय कल्पना और उनकी अभिव्यंजना के बांकपन ने पाठकों पर जादू सा किया था, जो अभी भी पढ़ते समय सहज ही समझा जा सकता है। वर्षा की एक छटा में उनके काव्य बिम्बों की इन्द्रधनुषी छटा द्रष्टव्य है–

''बदरिया डर डर कर झर री
सागर पर मत झरे अभागिन
गागर को भर री
एक–एक दो–दो बूंदों में
बंधा सिन्धु का मेला
सहस–सहस वन विहँस उठा है
यह बूंदों का रेला
तू खोने से नहीं बदरी
पाने से डर री
बदरिया डर कर झर री।''

पावस की बदरिया का कितना जीवन अंकन किया है चतुर्वेदीजी ने। इसी संदर्भ में और भी द्रष्टव्य है–

''मै अपने से डरती हूँ सखि
पल पर चढ़ते जाते हैं
पद आहट बिनरी चुपचाप
बिना बुलाये आते हैं दिन
मास बरस में अपने आप
लोग कहें चढ़ चली उमर में
पर मैं नित्य उतरती हूँ सखि
मैं अपने से डरती हूँ सखि।''

विष्ण प्रभाकर जी ने 4 अप्रैल, 1989 को कानपुर में पं. माखनलाल चतुर्वेदी जन्मशती समारोह के उद्‌बोधन में उन्हें 'असाधरण काव्य

पुरुष' से संबोधित करते हुए उनके व्यक्तित्व–कृतित्व का यह मूल्यांकन किया था–''माखनलाल चतुर्वेदी स्वतंत्रता संग्राम के महान युग के भोक्ता और स्रष्टा था। उनके साहित्य में उनके ये दोनों रूप मुखर हुए हैं। वहाँ क्रान्ति का शंखनाद भी है और सौंदर्य की अनुभूति भी। उन्होंने अपने लोकप्रिय प्रेम को उसी तरह राष्ट्रप्रेम में रूपांतरित कर दिया, जैसे महादेवी वर्मा ने आध्यात्मिकता में। इसीलिए उनका मुखर स्वर क्रांति और विद्रोह का ही बन पड़ा है। ये बांसुरी के स्थान पर पांचजन्य उठाते हैं और पिस्तौल रखकर गांधी की गोपियों में शामिल हो जाते हैं। तभी तो उनका पांचजन्य अहिंसक युद्ध का उद्घोष करने लगता है। वे देशभक्ति, उत्साह और ओज के अद्भुत कवि हैं। उनकी भाषा बड़ी जीवन्त है। फिर भी उसमें अनगढ़ता है। पाठकों तक उनके भाव सम्प्रेक्षण में कहीं कोई परेशानी नहीं पेश आती। वाणी में उन जैसी आत्मीयता और निर्भीकता अब विरल होती जा रही है। वास्तव में वे निरंतर चलते रहने में विश्वास करनेवाले असाधारण यात्रा पुरुष थे।''

उन धधकते दिनों में नवीनजी और दिनकरजी का स्वर आक्रामक है। मैथिलीशरण गुप्त का काव्य भी धर्मयुद्ध की भावना से अनुप्राणित है। इसी तरह सियारामशरण गुप्त की कविता में अहिंसा की करुणा का ही प्राधान्य है। किन्तु 'भारतीय आत्मा' की कविता में ओज और करुणा अविभक्त रूप से अनुस्यूत है। जेल में रची गई 'कैदी और कोकिला' इसका उत्कृष्टतम उदाहरण है–

''काली तू रचनी भी काली
शासन की करनी भी काली
काली लहर कल्पना काली
मेरी काल कोठरी काली
टोपी काली कमली काली
मेरी लौह शृंखला काली
पहरे की हुंकृति की व्याली
तिस पर है गाली ए आली
इस काले संकट सागर पर
मरने को मदमाती
कोकिल बोलो तो
अपने चमकीले गीतों को
क्यों कर हो तैराती
कोकिल बोलो तो।

अपने जीवन दर्शन के अनुरूप ही वे मातृभूमि की पूजा का दोना बलिदान के प्रेरणादायी रक्त से भरा हुआ देखने को उत्सुक रहा करते थे। इसीलिए जवानी के जोश को जगाते हुए वे उससे अपनी नसों में बहने वाले रक्त का प्रमाण माँगते हैं। उनकी यह कालजयी पंक्तियाँ युगों तक लैम्पपोस्ट की तरह पथ दर्शाती रहेगी–

''द्वार बलि का खोल, चल भूडोल पर दे
एक हिमगिरि एक सिर का मोल कर दे
मसल कर अपने इरादों सी उठाकर
दो हथेली हैं कि पृथ्वी गोल कर दे
रक्त है या है नसों में क्षुद्र पानी
जाँच कर तू सीस दे देकर जवानी।''

स्वदेश की शस्य श्यामला, सुखदा–वरदा धरती के प्राकृतिक दृश्यों का मानवीकरण करते हुए उन्होंने कई उपमान भी किये। द्रष्टव्य है कुछ उदाहरण–

''तम शिशु गोद में ले निशि की रानी
तारों का डर दिखलाकर उसे सुलाती है।''

वे आत्मा की अमरता, पुनर्जन्म आदि को भी नये–नये उपमान प्रदत्त कर अपनी हूक का बयान कुछ इस तरह करते हैं–

''जिस दिन तुमको कलियों से
आंतरिक प्यार आता है
उस दिन उसके सिर माँ के
चरणों में उतार आता है।''

प्रकृति वधू का उत्कृष्टतम संश्लिष्ट रूप चित्रण करते समय भी वे सुकुमार प्रेम भावनाओं में ही रमण करते हैं–

''गेहुमा के गर्व पर
सरसौं उठी है झूम
प्रकृति के सुकोमल
रवि किरणें रही हैं चूम।''

प्रकृति दर्शन को उनके नैनों को उन्होंने संत कबीर की तरह 'काजल की कोठरी' न कहकर आधुनिकता के बोध से सजा हुआ बंगला कहा। यह उनके मौलिकता सने निश्छल प्रेम और नूतन भावबोध का अनुपम उदाहरण है–

''आज नयन के बंगले में
संकेत पाहुने आये री सखि!''

उन्होंने संदर्भ रहित प्रेम काव्य भी पर्याप्त संजीदगी के साथ लिखा–

''जिस दिवस प्राण में नेह वंशी बजी
बालपन की खानी नई हो उठी
कि रसहीन सारे बरस रस भरे
हो गये जब तुम्हारी छटा छा गई।''

चतुर्वेदी जी सामाजिक जीवन में पूंजीपतियों की अथाह समृद्धि और सर्वहारा वर्ग की दयनीय दशा के सूक्ष्म सम्पन्न दर्शक मात्र न रहकर स्थिति का चित्रण कर समाज को सही संदर्भों में जूझने के लिए भी प्रेरित करते रहते हैं। उन्होंने लिखा है कि–

''महल उड़ रहे, झोपड़ी खो गई है
कि ईमान–ईमान को ठग रहा है।''

हरित क्रान्ति के नारे लगाते–लगाते भी हमारी कृषिजन्य अर्थव्यवस्था इतनी अव्यवस्थित हो चली की आज अन्नदाता की संताने अन्न के मुट्ठीभर दानों तक को सब्जी–दाल की तरह रही है। दूसरी ओर विश्ववैश्वीकरण का ख्याली पुलाव पकाकर बाजार वहाँ के धन्ना सेठों को सौंपा जा रहा है। हमारी स्वाधीनता, आत्मनिर्भरता, स्वदेशी भावना, उत्पादकता स्वावलंबन सबको लात मारने पर बैठे हैं। हम स्थिति का एक कटु सत्य इस काव्यांश से उभरा उठा देख रहे हैं।

''हरियाली के ब्रहत्त पर
कितनी गाली बरसेंगी
छोटी–छोटी संतानें, रट
अन्न–अन्न तरसेंगी
होंगे पकवान किसी के
उसकी इस रखवाली में
उसका यह रक्त सजेगा
कुछ धनिकों की थाली में।''

निष्कर्षतः पं. माखनलाल चतुर्वेदी की साहित्यिक तपश्चर्या से देश और साहित्य दोनों के संवर्द्धन का पथ प्रशस्त हो सकता है। उनकी सुपावन स्मृति को शत–शत नमन!

समीक्षा

संवेदनाओं को अभिव्यक्त करती कहानियाँ

डॉ. संजय चौहान
गुरदासपुर (पंजाब)
मो.–9478440472

समकालीन साहित्य, जीवन की आवश्यकताओं और जटिलताओं से अधिकाधिक प्रभावित हुआ है। बाहरी चकाचौंध और भौतिकवादी मानसिकता से साहित्य की सभी विधाएँ प्रभावित हुई हैं। इसमें पश्चिमी जीवन शैली और सांस्कृतिक आक्रमण ने अहम भूमिका निभायी है। जिसके परिणामस्वरूप साहित्यकार इसके कुप्रभाव से स्वयं को वंचित नहीं कर पाये हैं। परन्तु राम नगीना मौर्य जैसे कहानीकार हैं, जिन्होंने अपनी कहानियों को स्थानीय रहन–सहन, जीवनमूल्यों और भारतीय जीवन शैली से बाँधे रखा है। 'यात्रीगण कृपया ध्यान दें' कहानी संग्रह इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। संग्रह में कुछ 10 कहानियाँ हैं, जो अलग–अलग कथ्य पर आधारित हैं। इनमें लेखक भारतीय व्यक्ति और समाज के साथ ही भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों को अपने पात्रों के माध्यम से व्याख्यायित करने में सफल हुआ है।

'यात्रीगण कृपया ध्यान दें' संग्रह की पहली और महत्वपूर्ण कहानी है। कहानी का मनोवैज्ञानिक प्रभाव इतना है कि संपूर्ण संग्रह में इसकी गूँज–अनुगूँज निरंतर सुनी जा सकती है। लेखक ने बहुत ही सादगी और सहजता से रोजाना यात्रा करने वाले यात्रियों की मन:स्थिति को व्यक्त किया है। सुनहरे कपोल–कल्पना और कड़वे यथार्थ दोनों स्थितियों में व्यक्ति की मानसिक स्थिति क्या हो सकती है, यहाँ देखा जा सकता है।

'रोटशेन सिस्टम से' प्रतीकात्मक शैली पर आधारित कहानी है। कुर्सियों के माध्यम से मध्यमवर्गीय परिवार की मानसिकता और जीवनशैली को विवेचित करने में लेखक सफल रहा है। रोज की दिनचर्या, क्रिया–कलापों और विचारों को परिवार के सदस्यों के जरिये कुर्सियों की जुबानी व्यक्त किया गया है। घर के प्रत्येक सदस्यों के रहन–सहन, आपसी संबंधों और जीवन शैली को यहाँ लेखक ने सहज ढंग से व्यक्त किया है। सम सामयिक पारिवारिक जीवन के अंतर्सम्बन्धों की सजीवता को यहाँ देखा जा सकता है।

'उन्होंने नाम नरेश समथिंग बताया था' कहानी कार्यालयी परिवेश पर केन्द्रित है। कहानी का मुख्य पात्र नरेश है। उसने जिस दफ्तर में 35 वर्षों तक सेवा की, सेवामुक्ति के पश्चात् वह अपना काम करवाने के लिए कई वर्षों से उसी दफ्तर का चक्कर काट रहा है। सब कागजात ठीक होने के बावजूद भी दफ्तर में कार्यरत पूर्व सहकर्मी उसके काम को टाल रहे हैं। स्पष्ट अनुमान लगाया जा सकता है कि इन दफ्तरों में कितना अनाचार और भ्रष्टाचार व्याप्त है। लेखक ने बड़ी निडरता और स्पष्टता से इन दफ्तरों की अनीति और कुव्यवस्था को उजागर किया है। आजीवन दूसरों के लिए समर्पित ईमानदार जैसे लोगों को न जाने कितनी परेशानियों का सामना करना पड़ता है।

'ठलुआ चिंतन' कहानी में नाई की दुकान के जरिये स्थलों की ओर संकेत है, जहाँ जाने–अनजाने, शिक्षित–अशिक्षित विविध प्रकार के लोग एकत्रित होते हैं। यहाँ अक्सर अलग–अलग मुद्दों पर चर्चा–परिचर्चा होती रहती है। परंतु लेखक ने जिस मुद्दे का उल्लेख किया है, वह है अतिक्रमण की समस्या की। इस समस्या से भारत का कोई भी नगर, महानगर, उपनगर अछूता नहीं है। इसमें राजनैतिक पार्टियों और व्यक्तियों का वर्चस्व अधिकाधिक है। नेता सार्वजनिक जगहों को अपनी बपौती जागीर समझ उसका अतिक्रमण करते हैं, परन्तु शासन–प्रशासन द्वारा उन पर कोई कार्यवाही नहीं होती। आखिर प्रताड़ित किया जाता है गरीब। जैसा कहानी में पूड़ी, सब्जी बेचनेवाली औरत के साथ हुआ।

'फुटपाथ की जिंदगी' ऐसे लोगों की प्रतिनिधि कहानी है, जो साधनहीन हैं। आजीविका का कोई साधन नहीं है। ऐसे में फुटपाथ पर अपनी छोटी दुकान लगाकर अपना और अपने परिवार के लिए दो वक्त की रोटी की व्यवस्था कर पाते हैं। परन्तु यह कार्य भी उतना सरल नहीं है, जितना दिखता है। उन्हें नित्य नयी समस्याओं को झेलना पड़ता है। दलालों, दबंगों और मुफ्तखोरों के अमानवीय व्यवहार का शिकार होना, उनकी रोज की नियति बन चुकी है। फिर भी, इतना कुछ सहन करने के पश्चात् भी इनके भीतर का इंसानियत मरा नहीं। किसी अभावग्रस्त को देख, इनके भीतर की मानवीयता उसकी सहायता के लिए आगे बढ़ती है। कहानी में फुटपाथ पर दुकानदार द्वार एक भूखी गरीब लाचार स्त्री को मुफ्त खाना खिलाना इसका जीवन उदाहरण है।

'बेचारा कीड़ा' व्यक्ति के द्वंद्वमानसिकता की कहानी है। जहाँ व्यक्ति के जीवन में निरंतर द्वंद्व(उलझाव) की स्थिति बनी रहती है। व्यक्ति की अधिक और अधिक पाने की लालसा इतनी बढ़ जाती है कि वह अपने स्वार्थ के इतर कुछ नहीं देखता। फिर वह असंतोष और लालचवश भटकाव की स्थिति में आ जाता है। परन्तु अक्सर ऐसा देखा गया है कि अधिकाधिक पाने की इच्छा में उसे कुछ भी हासिल नहीं होता। नुकसान ही नुकसान है। कहानी का पात्र समर भी ऐसी मानसिकता का व्यक्ति है। वह प्रेम को अलग पैमाने पर तौलता है, अलग–अलग लड़कियों को एक साथ प्रेम में छलता है। परन्तु अंततः समय भी उसके साथ छलाव करता है। एक समय ऐसा भी आता है कि उसकेपास विवशता, पछतावा के अतिरिक्त कुछ भी शेष नहीं बचता।

'से चलकर के रास्ते, को जाते हुए' एक कामकाजी मध्यवर्गीय व्यक्ति की मन:स्थिति को व्यक्त करनेवाली कहानी है। चौबीस घंटे दफ्तरी काम के बोझ तले दबे रहना, छुट्टी वाले दिन भी बॉस की अधीनता से स्वयं को मुक्त नहीं कर पाना, उसे परिवार और समाज से अलग कर देता है। कहानी का पात्र घरवालों के लिए केवल पैसे कमाने का मशीन है। पत्नी को उसकी कोई आदत पसंद नहीं। प्रत्येक काम में टोकाटोकी उसकी आदत–सी बन गई है। दिनभर ऑफिस में काम करनेवाले व्यक्ति का परिवार में क्या स्थिति है, यहाँ स्पष्ट देखा जा सकता है। दफ्तरी काम और बॉस के दबाव में वह भावनाशून्य बन जाता है। एक व्यक्ति प्रतिदिन किन–किन हालातों से गुजरता है, यहाँ स्पष्ट: देखा जा सकता है।

'फिर जहाज पर आयो' कहानी सेवा मुक्त व्यक्ति की रोज की दिनचर्या पर आधारित है। सदैव व्यस्त, क्रियाशील, कर्मठता और व्यवस्थित जीवन व्यतीत करनेवाला व्यक्ति अक्सर जीवन के एक पड़ाव पर आकर बोझिल और निराशपूर्ण जीवन जीने के लिए बाध्य हो जाता है। परन्तु ऐसा सभी के साथ नहीं होता। आशान्वित व्यक्ति अतीत के सुनहरे क्षणों का स्मरण कर जीवन बोझिलता को दूर करने का सार्थक प्रयास भी करते हैं। कहानी में साहित्य और साहित्यकार की सजगता नियमितता और सकारात्मकता चिंतन की ओर भी लेखक ने संकेत किया है।

'तुमने कहा जो था' पारिवारिक, सामाजिक के साथ– साथ मनोवैज्ञानिक कहानी भी है। सुनेत्रा और सत्यजीत के माध्यम से कहानीकार, दाम्पत्य जीवन की बारीकियाँ को चित्रित करने में सफल रहा है। यह सत्य है कि जैसे–जैसे समय व्यतीत होता है, वैसे–वैसे संबंधों में बदलाव अवश्य आता है, परन्तु आत्मीय संबंध, मधुरता किसी–न–किसी रूप में जीवंत अवश्य रहती है। फिर भी इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि वर्तमानकालिक जीवन–पद्धति भौतिक सुख–साधनों पर आश्रित हो गया है। परन्तु भारतीय परिवार में आत्मीय संबंधों की गाँठें भावनात्मक स्तर पर अभी भी मजबूत है। तभी तो

सत्यजीत न चाहते हुए भी अपनी पत्नी सुनेत्रा के पास पहुँचता है।

'शेष आगामी अंक में' एक बुजुर्ग लेखक और एक युवती के माध्यम उत्पन्न गलतफहमी पर आधारित है। जिसका निराकरण लेखक ने पात्रों के माध्यम से अत्यन्त रोमांचित ढंग से किया है। व्यक्ति के जीवन में ऐसा होना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। परन्तु इसका समाधान सहजता से कैसे हो, कहानी और इसके पात्रों से सीखा जा सकता है।

'यात्रीगण कृपया ध्यान दें' संग्रह की सभी कहानियाँ अलग–अलग कथ्य को आधार बनाकर लिखी गई हैं। जीवन में घटित होनेवाली छोटी–छोटी घटनाओं और आधुनिक परिवेश में प्रभाववश हमारी मन:स्थिति को लेखक ने जितनी सहजता और सजगता से कथा रूप में उकेरा है, वह अत्यधिक महत्वपूर्ण है। कहानियों को पढ़ते हुए कहीं भी भाषिक दुराग्रह नहीं मिलता। हाँ, स्थानीय और क्षेत्रीय भाषा, शब्द, कहावतें एवं जीवन शैली को कहानियों में देखा जा सकता है। जिसके कारण कहानियाँ अधिक रोचक बनी हैं। संवाद स्तर पर लेखक छोटे–छोटे संवादों के जरिये अपनी बात रखने में सफल रहा है। कथ्य कथानक और प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से संग्रह महत्वपूर्ण है।

मधुकर वनवाली
मुजफ्फरपुर
मो. 7923958085

कविता

कस्तूरबा

बड़े नसीब वाले थे बापू
उन्हें तुम जो मिली थी, बा
और तुम्हारा यह नाम
कहलाती तुम जो, माँ
न तो उनका दिया
और न हीं उनके कारण
बल्कि हम सबके प्रति
तुम्हारे निष्कपट वात्सल्य
का है परिणाम, निर्विवाद

बापू भी कसते थे न, बा
तुम्हारी निष्ठा और सद्गुणों को
अपनी निर्मम कसौटी पर
पर तुम एक तेज पुंज प्रकाशमान
अफ्रीका हो या हिन्दुस्तान
था उन्हें भी यह भान
बापू भी तो करते थे तुम्हारा, मान

माना वंचित थी, बा
तुम किताबी ज्ञान से
पर ज्ञान ही सब है
शायद नहीं
तुम सगुण थी
श्रद्धा भक्ति की आभा में
आलोकित, सूर की गोपियाँ सम
तेजस्विनी, मृदुभाषिणी
उपालंभ तुम्हारे
उस अधनंगे फकीर को
उद्धव की तरह चकित कर जाते थे

अफ्रीका की वो बदनाम जेलें भी
कहाँ कर सकी पार
धैर्य का सिंधु तुम्हारा
क्या थे स्तोत्र, कहो न बा
तुम्हारी अपरिमित शक्ति के
शायद गीता और रामायण
तुम्हारी निष्ठा या सद्गुण
धन्य थे बापू तुम
जो मिली ऐसी सती सीता
सह सकती तुम्हारे साथ
अगणित वनवास

व्याधि में भी तज देती
पथ्य जो होता अखाद्य
अनुसरण बापू तुम्हारा
गृहस्थ हो या वैराग्य
चुपचाप सही कठोरता
ना हीं जताया अधिकार
बापू तुम सचमुच धन्य ही थे
बा जो तुम्हें मिली थी

छू भी कहाँ पाया बा
आलस्य कभी तुम्हें
जरावस्था में भी
आश्रम की रसोई में
निर्विकार, करती सब काम
भूखे प्यासे वत्स तुम्हारे
कहाँ बिना जाते जलपान

मिला भले महलों का वैभव
कैद कहाँ रह सकते प्राण
खोजती अपने सेवाग्राम
उड़ गये प्राण पखेरु तेरे
अंत हुआ जीवन निष्काम
गोरे फिरंगी शासन की
हिला तो दी चूलें तमाम
और जाते–जाते भी
कर गई तुम बा
बापू का लक्ष्य आसान

कैसे इतना उठी ऊपर
सिद्ध जीवन हुआ कैसे
शिक्षा दीक्षा भी मिली न
नभ को तूने छुआ कैसे
संस्कार बल से पूर्ण पातिव्रत्य
वसुधैव कुटुम्बकम् का प्रमाण
देख जो जो लेती थी, बा
तुम सबको एक ही समान

बा, कस्तूर बा
हृदय सुरभित था तुम्हारा
भरा परिमल हो उसमें जैसे
किसी कस्तूरी मृग का
बनाता जो तुम्हें
दयामयी गुणवान
और मेरे बापू से भी महान।

समीक्षा

मचान : उत्कृष्ट उपन्यास

डॉ. धर्मपाल साहिल

कुलदीप शर्मा
मो० : 7018402984

तेजी से बदरंग होते जा रहे संसार में लोककथाएँ एक अलग ताजा चटख रंग की तरह आती है। इनका रंग वहाँ दिख जाता है, जहाँ यह अपना अस्तित्व किताबों से बचाकर रखे होते हैं। गाँव की किसी पगडंडी पर, अलाव पर, बड़े–बूढ़ों की चौपाल पर या स्त्रियों के जमावड़े में या फिर निपट देहात के तीज त्योहारों पर यह किस्से मुखर रहते हैं। भूमंडलीकरण और उपभोक्तावादी के इस घोड़दौड़ में लोककथाओं का अद्यतन रूप भी खासी हद तक तकनीक की भेंट चढ़ चुका है, जिसके चलते इन किस्मों के आंतरिक स्ट्रक्चर से वह रूमानी भदेसपन या तो कुंठित हो जाता है या फिर सिरे से गायब रहता है...साहित्य में जब लोककथाओं को किस्सों कहानियों या काव्य का विषय बनाया तो हर कवि कथाकार ने इसे अपने ढंग से रचना के ढाँचे में फिट किया। डॉ. धर्मपाल साहिल ने अपने आठवें उपन्यास 'मचान' में चंबा क्षेत्र की प्रेमकथा कुंजू और चंचलो को एक छायाग्रह की तरह कथानक की पृष्ठभूमि में रखा है, बल्कि कहना चाहिए कि अपने दो मुख्य पात्रों के नाम उस लोककथा से उठाये हैं। प्रकारान्तर ये यह चंबा, बल्कि पूरे हिमाचल के जनजीवन में रची बसी उस प्रेमकथा का पुनर्स्मरण है। यूँ तो कोई समानता या सामंजस्य दोनों में नहीं है, पर इस लोक प्रेमकथा की अनुगूँज पूरे कथानक में महसूस की जा सकती है। 'मचान' तो आधुनिक जीवन की संश्लिष्टताओं और भावनात्मक पेचीदगी के साथ अपने पात्रों में अपने–अपने समय के प्रश्नों के हल ढूँढ़ता है। इस उपन्यास में डॉ. धर्मपाल साहिल लोककथा जैसी सरलता और उत्कंठा अपनी बेमिसाल किस्सागोई के बल पर अंत तक निभा ले गये हैं। इस उपन्यास में कुंजू और चंचलो के बीच वह नैसर्गिक प्रेम ही है, जो इसे मूलकथा से जोड़े रखता है, वरना मचान की कथाभूमि मूलकथा से बिल्कुल अलग है। कथानक में भी, पृष्ठभूमि में भी और जीवन स्थितियों में भी, यहाँ डॉ. धर्मपाल साहिल पहले पृष्ठ से इस युग की कथा कहते–कहते अचानक स्वयंवर की एक असंभव–सी स्थिति का वर्णन करते हैं तो लगता है कि यह जरूर कोई जबरन बढ़ गयी घटना होगी। लगता है कि आगे चलकर कल्पना और यथार्थ के बीच की यह खाई और चौड़ी हो जाएगी और इसे पाटना आसान नहीं होगा, पर पाठक के तौर मैं कह सकता हूँ कि हम जल्द ही गलत साबित हो जाते हैं और कहानी अपने विकास क्रम में अधिक से अधिक कठोर यथार्थ के धरातल पर बढ़ने लगती है। कहना न होगा कि कि डॉ. धर्मपाल साहिल अपने इस उपन्यास में बिलाशक एक मास्टर किस्सागो के रूप में सामने आए हैं। हर पल यह जिज्ञासा बनी रहती है कि आगे क्या हुआ। पथ पर मन में इस तरह की जिज्ञासा पैदा करना और फिर उसे अंत तक बनाए रखना इधर आ रहे उपन्यासों में बहुत कम देखने को मिलता है। स्वयंवर दरअसल चंचलो के पहलवान पिता महावीर की अपनी युवा हो रही पुत्री को लेकर स्वाभाविक चिंताओं का नतीजा है। स्वयंवर की बात सुनकर हरिपुर गाँव में हर साल आयोजित होनेवाली छिंज में युवाओं में एक तरह की होड़ लग जाती है, सभी युवा और अविवाहित पहलवान चंचलो को पाने के लिए छिंज में अपना–अपना भाग्य आजमाते हैं। इसी गाँव के दो युवा पहलवान दिलावर और जगदीश जो कई मर्तबा पहले भी इस अखाड़े में बड़े–बड़े कुश्ती मुकाबले में जीत चुके हैं। इस बार जीतोड़ मेहनत करते अखाड़े में उतरते हैं। एक तरह से उनकी परस्पर प्रतिद्वन्द्विता पहले से है, पर इस बार वे स्वयंवर में है चंचलो को पाने के लिए। दोनों कई नामी पहलवानों को हराकर इस दंगल में फाइनल में भिड़ते हैं और दिलावर विजेता होकर चंचलो जैसी रूपसी को जीवनसाथी के रूप में पा जाता है। जैसे–जैसे कहानी आगे बढ़ती है, स्वयंवर जैसी प्रथा का अटपटापन जेहन से निकल जाता है। उलटे यह बिल्कुल स्वाभाविक लगता है कि चंचलो छिंज की माली जीतनेवाले किसी अविवाहित युवा पहलवान के गले में वरमाला डाले। अटपटापन सिर्फ इसलिए कि यह सब उस क्षेत्र में होता है, जहाँ वर–वधू की जन्मकुंडली मिलाकर रिश्ते तय किये जाते हैं। शरीर सौष्ठव से ज्यादा लड़के की आर्थिक स्थिति देखी जाती है। वर पक्ष का खानदान, ऊँच–नीच और उनके चारित्रिक पहलू देखे जाते हैं। वहाँ चंचलो के पिता महावीर जो खुद एक नामी पहलवान रह चुके हैं, यह घोषणा करते हैं कि उनकी रूपसी पुत्री इस छिंज यानी दंगल का फाइनल जीतनेवाले पहलवान के गले में वरमाला डालकर उससे शादी रचाएगी। दिलावर जहाँ गाँव का सीधा सादा और मेहनती युवा है, वहीं जगदीश चालाक, लंपट और महत्वाकांक्षी है। पुलिस की नौकरी करते–करते उसे शराब जैसी लत भी लग गयी है और वह गाँव आवारा नशेड़ी दिशाहीन युवकों का अगुआ भी बन बैठा है। दोनों कभी उसे फाइनल के बाद दंगल में तो नहीं भिड़े पर इनके बीच द्वंद्वका एक महीन–सा बितान तनता चला जाता है। यह द्वंद्वचंचलो को लेकर तो है ही, इसका एक कारण यह भी है कि जगदीश स्वंय को दिलावर के मुकाबले अधिक योग्य और सम्पन्न मानता है। जगदीश की नौकरी पुलिस में होने के कारण उसका गाँव के सीधे–सादे लोगों पर जो रुआब है, उससे वह गाँव का एक प्रभावशाली व्यक्ति बन बैठा है। उसके स्वभाव में हेकड़ी है और कहीं भी कैसे भी अपनी बात मनवा लेने का दंभ है। चंचलो पर उसकी कुदृष्टि उसी दिन से है, जिस दिन वह छिंज का फाइनल हार गया था। दिलावर की उस अंतिम पटकनी से जगदीश खुद ही नहीं हारा, चंचलो को भी उसने खो दिया था। दिलावर चंचलो के साथ अपनी गृहस्थी में मशरूफ रहता है। उसकी जिंदगी चंचलो,खेत और मवेशियों तक सीमित हो जाती है। उसकी सीमित इच्छाएँ और थोड़े से सपने है और वह चंचलो को अपने जीवन में पाकर खुश है, संतुष्ट है। दिलावर अपनी खेती–बाड़ी को जंगली जानवरों से बचाने के लिए खेत के बीचोबीच एक मचान बनाता है। मचान का प्रचलित अर्थ है एक शिकारी का स्ट्रेटेजिक बैठने का स्थान जहाँ से वह अपने शिकार की टोह लेता है और उस पर निशाना साधता है। इस उपन्यास में मचान का प्रयोग बहुअर्थी है। दिलावर के लिए मचान महज जंगली जानवरों की रक्षा करने के लिए व स्वयं सुरक्षित रहने का एक साधन है, जिसे हिमाचल के इस भूभाग में 'तन्न' कहा जाता है। जगदीश के लिए यह मचान संभवतः एक शिकारी का मचान है। अचानक इसी तन्न या मचान पर एक रात को दिलावर की रहस्यमयी स्थितियों में मौत हो जाती है, नतीजतन चंचलो अपने दो बच्चों संग इस दुनिया में नितांत अकेली पड़ जाती है। तभी उसे यह भी एहसास होता है कि वह अर्धशिक्षित या लगभग अशिक्षित है। अशिक्षा का यह दंश उसे भीतर तक सालता है। मास्टर कुंज कुमार जो छिंज में मंच संचालन का काम संभालता था, हरिपुर गाँव के प्राइमरी स्कूल में अध्यापक हैं। चंचलो के बच्चे इसी स्कूल में शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं और चंचलो अपने बच्चों की पढ़ाई और फीस को लेकर चिंतित रही है। फिर एक दिन वह खुद अपने दोनों बच्चों के साथ स्कूल जाती है और मास्टर कुंज कुमार से उसके व्यक्तित्व से, उसकी उदारता से और उसकी भद्रता से बहुत प्रभावित होती है। दिलावर की मौत के बाद कहानी में जो ट्विस्ट है, वह यह कि युवा चंचलो हर कदम पर जगदीश की नजरों में खटकने लगती है और वह उसे किसी भी तरह पा लेने के लिए लालायित है। अपने मंसूबों को पूरा करने के लिए वह हर तरह के हथकंडे अपनाता है। उसके खेतों की बिजाई–निराई का लालच देता है, पर चंचलो उसके लालची स्वभाव से परिचित है। वह उसे दो टूक जवाब देकर हड़का देती है। दिलावर की मौत के बाद चंचलो के पिता महावीर और घर में पाली गयी

एकमात्र गाय की मौत चंचलो को और ज्यादा तोड़ देती है। मास्टर कुंज कुमार के साथ चंचलो की नजदीकियाँ जगदीश को बुरी तरह आहत करती है और वह गाँव के आवारा नशे के लालची युवकों के साथ मिलकर कुंज कुमार के खिलाफ एक साजिश रचता है। यह साजिश एकी है कि मास्टर कुंज कुमार के जीवन में एक बवंडर ला देती है। कुंज कुमार अचानक एक समझदार और लोकप्रिय अध्यापक से एक शातिर अपराधी और भगोड़ा बनकर दुनिया के सामने आता है। कुंज कुमार पर अचानक एक आरोप लगता है कि उसने स्कूल में पढ़नेवाली एक छोटी दलित बच्ची के साथ बलात्कार करने का प्रयास किया और वह स्कूल में इसी कारण बेहोश हो गयी। यह एक सोचे–समझे षड़यंत्र का हिस्सा था, जिसकी इबारत जगदीश ने लिखी थी। इस शिकायत पत्र पर तथाकथित पीड़ित बच्ची के पिता का अंगूठा भी लगा है और इस शिकायत की संस्तुति स्थानीय एम.एल.ए भी करता है। पूरा प्रिंट मीडिया और टी.वी. चैनल इसमें अपनी खलनायकी भूमिका निभाते हैं और टी.आर.पी. बढ़ाने के चक्कर में यह मुद्दा इस तरह उछाला जाता है कि हर कहीं लोग इसके खिलाप प्रदर्शन करते हैं। वे सब लोग जो मास्टर कुंज कुमार के चरित्र के विषय में जानते थे, सकते में आ जाते हैं। केवल एक रौशनी है, जो खुलेआम कुंज कुमार के पक्ष में है और छाया में चलनेवाली चंचलो भी जानती है कि मास्टर कुंज कुमार निर्दोष है। वह जानती है कि जगदीश ने ही उसे फँसाया है, पर वह कुछ भी कर पाने की स्थिति में नहीं है। यह सारा प्रकरण उस 'डेडली–नेक्सस' का हिस्सा है, जो पुलिस, अपराधी, राजनेता और मीडिया के बीच बहुत फल–फूल रहा है और आम आदमी के पास जिसका कोई तोड़ नहीं है। मास्टर कुंज कुमार जगदीश द्वारा रची गयी इस साजिश में फँसकर इस कदर असहाय हो जाता है कि गिरफ्तारी से बचने के लिए वह रातोंरात भूमिगत हो जाता है। इज्जतदार आदमी का इस तरह भगोड़ा हो जाना पाठक को भी आक्रांत कर देता है। हमारा समाज आज जिस अनैतिकता की चपेट में है, वह इस पूरे प्रकरण में अपनी पूरी भयावहता के साथ उभरकर आयी है। इसी प्रकरण में रौशनी की भूमिका भी एक ताजादम और रोशनख्याल व्यक्तित्व के रूप में उभरकर सामने आई है। वह आर्थिक और भावनात्मक रूप से आजाद है और निजी जिंदगी के झटकों ने उसे निर्भीक बना दिया है, वह कुंज कुमार की लेखक के तौर पर प्रशंसक है और एक गहरे स्तर पर उनकी मित्रता एक दूसरे का संबल है। वह कुंज कुमार पर अचानक आई आपदा से बड़ी सूझबूझ और साहस के साथ जुझती है। रौशनी से चंचलो का मिलना और उसकी फर्म में नौकरी मास्टर कुंज कुमार की वजह से संभव हुई थी। इसी बीच दिलावर की मौत की फाइल को दोबारा से खुलवाना, उसकी पोस्टमार्टम रिपोर्ट निकलवाना, जो पुलिस ने जगदीश के दखल के कारण छुपा ली थी, पुलिस पर दबाव बनाकर उनसे सच्चाई उगलवाना और इसमें सीधे–साधे दिलावर की भूमिका का जाहिर होना, यह सब काम रौशनी और मास्टर कुंज कुमार इस तरह करते हैं कि धीरे–धीरे यह भी साफ हो जाता है कि दिलावर की हत्या हुई थी और उसमें जगदीश ने थाने में बंद दो कैदियों का इस्तेमाल किया था। एक अन्य स्त्री पात्र सुरंजना जो जगदीश की रखैल है, रोशनी से मुलाकात के बाद अपने जीवन में बदलाव ले आती है और रौशनी के कहने पर दिलावर हत्याकांड में सच बोलने को तत्पर हो जाती है। इस तरह धीरे–धीरे सारी घटनाओं पर से रोशनी और मास्टर कुंज कुमार के प्रयासों से धुंध छँट जाती है। उपन्यास का यह भाग एक सस्पेंस थ्रिलर की तरह चलता है और पाठक उन सारी घटनाओं से भावनात्मक जुड़ाव महसूस करता है। घटनाओं में एक से अधिक बार नाटकीयता आ गयी है, पर वह कहानी के प्रवाह में बखूबी खप जाती है। कुछ ओपरा या बनावटी नहीं लगता। अंत में जब रहस्य के बादल एक–एककर छँटने लगते हैं तो मास्टर कुंज कुमार भी सुर्खरू होकर दोबारा उसी स्कूल में ज्वाइनिंग देता है, जहाँ से उसे निलंबित किया गया था। इसी बीच बहुत सारे पात्र जो इस मुहिम में रौशनी का साथ देते हैं, वे समाज के गुडी गुडी लोग हैं। उपन्यास की कथावस्तु में उनका योगदान यही है कि वे रौशनी के आग्रह पर और स्वेच्छा से भी उसकी मदद के लिए हमेशा तत्पर रहते हैं। कहानी अंततः एक सुखान्त की ओर बढ़ती है। पर इस सबमें लोककथा के दो पात्र कुंज और चंचलो बहुत पहले से प्रेम और समर्पण की आधी अधूरी अभिव्यक्ति में एक दूसरे के लिए न्योछावर हो जाने की मनःस्थिति में आ चुके होते हैं। फिर एक आश्रम में वे सारी वर्जनाएँ तोड़कर शारीरिक स्तर पर इस प्यार पर मुहर लगाते हैं। कुंजू चंचलो बिना शादी किये एक हो जाते हैं। लगभग तीन सौ पृष्ठों के इस उपन्यास में लेखक ने जिस भौगोलिक अंचल को अपनी कथावस्तु के लिए चुना है, वह हिमाचल पंजाब का सीमांत क्षेत्र है। वहाँ के ग्रामीण जीवन का साहिल को व्यक्तिगत अनुभव है। वे कई वर्ष तक वहाँ अध्यापन कार्य करते रहे हैं। जाहिर है कि मास्टर कुंज कुमार का किरदार बहुत हद तक लेखक का अपना भोगा हुआ यथार्थ भी है। निजी अनुभवों में निःसृत किसी भी रचना प्रक्रिया में उस क्षेत्र विशेष की जीवन स्थितियों का प्रामाणिक वर्णन मिलना स्वाभाविक है। यही कारण है कि जब डॉ. धर्मपाल साहिल हरिपुर गाँव के मेलों, त्योहारों, उत्सवों और परंपराओं पर कलम चलाते हैं तो आपके आसपास उस हवा का स्वाद तैरने लगता है। यह लेखक के लिए रचनात्मक तुष्टि का सबब हो सकता है। साहिल सात उपन्यास और कई अन्य पुस्तकें लिखने के बाद मचान में अपना सारा जमा अनुभव उड़ेल देते हैं और पाठक के हाथ में एक ऐसी कृति देते हैं, जिसमें पाठक सिर्फ पाठक रह जाता है। प्रश्नकर्ता नहीं बन पाता। हमारे गाँवों में निर्विवाद रूप से जातीय वर्गीकरण और जातीय संघर्ष छोटी–छोटी घटनाओं में मौजूद रहता है, वैसा संघर्ष मचान में भी है। पर वह कहानी के दबाव में अंडरकरंट की तरह विद्यमान है, कहानी के मुख्य खांचे में नहीं आता। किसी भी कहानी या उसके पात्रों को लेकर लेखक के निजी मन्तव्य रहते हैं, जिनसे एक संवेदनात्मक लगाव बना रहता है। ऐसे में किसी वैचारिक दृष्टिकोण को निभाने की गुंजाईश कम रहती है। डॉ. धर्मपाल साहिल का यह उपन्यास किस्सागोई की एक बेहतरीन मिसाल है। रौशनी और सुरंजन के माध्यम से स्त्री– पुरुष संबंधों की दो नितांत अलग तरह की व्याख्याएँ यहाँ मिलती हैं। एक पति द्वारा उपेक्षित और त्यक्त किन्तु हर अर्थ में अपने समय से मुठभेड़ करती और जीतती हुई, दूसरी प्रेमी के लिए पति को छोड़ देनेवाली और बाद में उसकी रखैल बन जाने को अभिशप्त। इतना ही नहीं, वह प्रेमी से केवल शारीरिक भूख की तुष्टि का प्रयोजन तलाशती उनकी आपराधिक गतिविधियों में भी बिना कुछ सोचे शामिल हो जाती है। एक आत्मसम्मान और सूझबूझ से जीवन की चुनौतियों से जूझती और दूसरी बिना रंचमात्र स्वाभिमान के पतन के रास्ते पर लगातार फिसलती हुई। जैसे ही जगदीश की पत्नी और सुरंजनी रौशनी के उजले व्यक्तित्व के संपर्क में आती है, वे जगदीश के खिलाफ गवाही देने को तैयार हो जाती है। पर अपनी बाजी पलटते देखकर जगदीश आत्महत्या कर लेता है और इसके साथ ही दिलावर की हत्या और दूसरे मामलों का भी पटाक्षेप हो जाता है। उपन्यास में दूसरे पात्र भी हैं। मसलन रौशनी की फर्म के मालिक मित्तलजी, रिटायर्ड जज जो रौशनी की मदद करते हैं, पर सबसे रहस्यमय पात्र हैं बकरीवाले बाबा! दिलावर की मौत के बाद वे गाँव छोड़कर चले जाते हैं और उसके बाद उनका उपन्यास में कोई वर्णन नहीं है। मास्टर कुंज कुमार का चंचलो के लिए प्रेम उदात्त भावनाओं से लबरेज है और कहीं भी ऐसा नहीं लगता है कि कुंजकुमार चंचलों के कुंजू नहीं हैं। तमाम संघर्षों और पीड़ाओं से निकलकर वे एक सुखद अंत की ओर लौटते हैं। मास्टर कुंज कुमार पता नहीं, क्यूँ प्रेम की परिणति विवाह में नहीं चाहते और कई तरह के तर्क देकर वे चंचलो को इस बात के लिए राजी कर लेते हैं कि उनका संबंध जैसा है, वह शादी के घेरे में आ जाने के बाद सीमित हो जाएगा। कुंजू और चंचलो के लिए –'दुख भरे दिन बीते रे भइया, अब सुख आयो रे।' वाली स्थिति है। जैसे उनके दिन फिरे, वैसे सबके फिरें।

आत्मकथ्य

जीवन जो तूफानों झंझावातों से टकराता निरंतर गतिशील रहा

कमल किशोर गोयनका
अशोक बिहार, दिल्ली
मो. 9811052469

ऋग्वेद का एक प्रसिद्ध मंत्र है–'एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति।' अर्थात् सत्य एक है और वेदज्ञ (विद्वान) उसको अन्य–अन्य नामों से पुकारते हैं। साहित्य भी ऐसा ही है। साहित्य सृष्टि के सत्य का उद्घाटन करता है और साहित्य में यह सत्य मनुष्य की संवेदनशीलता तथा उसकी रागात्मकता से उत्पन्न होता है। साहित्य इसी मानवीय संवेदना की सत्यता का कर्मक्षेत्र तथा धर्मक्षेत्र है और यह दावा करता है कि वह मनुष्य के अंतर्बाह्य सत्य का ही चित्रण करता है। साहित्य की काव्य, कथा, नाटक आदि विधाएँ इस संवेदना को आधार बनाती है, लेकिन इसमें एक ऐसी विधा है, जो सर्वांगीण सत्य का दावा करने में हमेशा शर्माती रही है और वह विधा है आत्मकथा या उसे आप आत्मकथ्य कह सकते हैं। संभवतः इसी आशंका के कारण महात्मा गाँधी ने अपनी आत्मकथा को 'सत्य के प्रयोग' कहा था और उन्होंने कुछ ऐसे सत्यों का भी उद्घाटन किया था, जो प्रायः किसी भी लेखक के लिए असंभव भी कहा जा सकता है। इसी कारण डॉ. नगेन्द्र ने अपनी आत्मकथा को अर्धसत्य कहा था, क्योंकि वे अपनी आत्मकथा में गाँधीजी जैसे सत्य के प्रयोग नहीं कर रहे थे और उन्हें साहित्य का भी महात्मा बनना नहीं था। मैं डॉ. नगेन्द्र का शिष्य था और मैं उनके परिवार के लोगों से भी खूब परिचित था। वे निश्चय ही अपने जीवन के अनेक अध्यायों, प्रसंगों और घटनाओं को अपनी आत्मकथा में नहीं लिख पाये और वह अर्धसत्य भी नहीं बन पायी। बच्चन की आत्मकथा 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' इस दृष्टि से बड़ी चर्चित रही और उन्होंने कुछ गोपनीय संबंधों की जानकारी भी दी, लेकिन मैंने उनसे एक बार कहा था कि उनके कुछ गीत कुछ और कहानियाँ भी कहते हैं, तो उन्होंने इसे स्वीकार किया और कहा था कि मेरे कुछ गीत प्रेम संबंधों की कहानी कहते हैं। असल में यह मनुष्य की फितरत है कि वह केवल अपने ही सामने स्वयं को निर्वस्त्र कर सकता है, किसी दूसरे के सामने नहीं। प्रायः हर मनुष्य के जीवन में ऐसे प्रसंग आते हैं, जो वह अकेले ही जीता है और अकेले ही उनका दंड भोगना चाहता है और अपने साथ ही उन्हें इस संसार से ले जाना चाहता है। इस संबंध में मुझे एक प्रसंग और याद आ रहा है। प्रमचंद ने 'हंस' का आत्मकथांक निकाला था। हिन्दी साहित्य में आत्मकथा को देखने, खोजने और जानने का यह पहला प्रयास था, लेकिन जब जयशंकर प्रसाद ने अपनी आत्मकथा भेजी, तो वह केवल एक कविता के रूप में थी। 'उज्ज्वल गाथा कैसे गाऊँ मधुर चाँदनी रातों की।' यह केवल संकेत था, कहानी गायब थी। आत्मकथा की ऐसे ही नियति है, लेकिन प्रेमचंद ने मृत्यु के समय अपनी पत्नी से यह कंफेशन किया था कि मेरे एक और स्त्री से संबंध थे, पर वे इसे अपने आत्मकथ्य में नहीं लिख पाये। सत्य की सार्वजनिक स्वीकृति कई बार आत्मघाती होती है। यह ईश्वर की कृपा है या अकृपा, यह नहीं कह सकता कि मेरा जीवन न तो नगेन्द्र जी अथवा बच्चन या जयशंकर प्रसाद की तरह था, वह छुटपुट कथाओं के अतिरिक्त ऐसे कोई प्रसंग नहीं हुए, जिन्हें गोपनीय रखने की आवश्यकता हो। फिर भी ऐसा कोई भी दावा नहीं कर सकता कि जो जैसा जीवन जीया है, उसका पल–पल का वास्तविक रूप में लिखा जा सके, पर मैं यह अवश्य कहूँगा कि जो भी लिखूँगा, सच लिखूँगा और केवल सत्य लिखूँगा।

मैं अब 11 अक्टूबर को 82 वर्ष का हो जाऊँगा। मेरे माता–पिता ने 90 के आसपास की आयु पाई थी, परन्तु मेरे दादा श्री बद्रीदास गोयनका ने बहुत आयु नहीं पाई और इस कारण मैं उन्हें नहीं देख पाया। मेरे दादाश्री सेठ बद्रीदास गोयनका शहर के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे और म्युन्सिपैलिटी के चैयरमैन भी रहे। उस समय हिन्दी के विख्यात लेखक डॉ. लक्ष्मण सिंह, जिन्होंने कालिदास के ग्रंथों का अनुवाद किया, बुलंदशहर के कलक्टर थे और दादाश्री का उनसे संपर्क रहता था। मेरा जन्म उनके ही परिवार में बुलंदशहर के एक जमींदार परिवार में हुआ। मेरे पिताश्री चंद्रभान गोयनका और माँ इलायची देवी थीं। मेरी माँ पटना की कानोडिया परिवार श्रीबैजनाथ कानोडिया नानाजी, श्रीकाशी प्रसाद कानोडिया मामाजी थे, मैं अपनी नानी और मामी से मिल सका था। मैं वर्ष 1986 में कोलकाता से राष्ट्रपति जैल सिंह से 'प्रेमचंद : विश्वकोश' पर मिले पुरस्कार को लेकर लौटते समय पटना रुका था, तो श्रीगोपीकृष्ण कानोडिया तथा प्रो0 विश्वनाथ अग्रवाल ने एक गोष्ठी आयोजित करके मेरा सम्मान किया था। श्रीगोपीकृष्ण कानोडिया मेरी माँ के भतीजे थे और उनके पास पुरातत्व वस्तुओं एवं चित्रों का अद्भुत संग्रह था और वे मेरे पुरस्कृत होने से बड़े प्रसन्न थे। मेरी एक मौसी थी, जो गाजीपुर के प्रसिद्ध कोर्ट में रहती थी और उनके पुत्र कालिप्रसाद जी शहर के प्रतिष्ठित व्यक्ति रहे। मेरे पिताश्री गाँधीजी के भक्त थे और शुद्ध खादी भंडार खोलकर मेरठ के बाद खादी का बड़ा व्यापार चलाते रहे। पिताश्री ने सारे जीवन खादी ही पहनी और जीवनभर सादा जीवन जीया। मेरी दादीश्री कुंजकुँवरि हाथरस की थी और बड़ी ही जीवट और साहसी महिला थीं। मेरे दादाश्री की असमय मृत्यु पर उन्होंने शहर के शीतलगंज मुहल्ले में, जहाँ हमारी पुरानी हवेली है, एक लाख रुपये में उनकी आत्मा की शांति के लिए श्रीलक्ष्मीनारायण भगवान का भव्य मंदिर सन् 1916 में निर्मित कराया था और आज भी उसी भव्यता के साथ भक्तों की आराधना का केन्द्र बना हुआ है। मैं उसका मैनेजिंग ट्रस्टी हूँ और शहर के कई गण्यमान्य लोग इसके ट्रस्टी हैं, जो मंदिर की व्यवस्था के लिए जिम्मेदार हैं। मेरी माताश्री भी धार्मिक रुचि की थीं, स्वाभिमानी कर्मशील और कुशल गृहिणी और उन्होंने कई अंधविश्वास छोड़ दिये थे। उनका विवाह 13 वर्ष की आयु में हो गया था, लेकिन बहुत समझदार थीं। संसार की गतिविधियों में उनकी बड़ी रुचि थी और वे कुछ–न–कुछ जानने के लिए उत्सुक रहती थीं। मैं जब शायद 10 वर्ष का रहा होऊँगा, उन्होंने श्रीमद्भगवद्गीता मेरे हाथ में दी और मुझे नियमित पाठ करने का आदेश दिया। इस प्रकार मुझमें जो धार्मिकता है तथा अपने हन्दूधर्म पर जो गर्व है, वह मेरी दादीश्री द्वारा निर्मित मंदिर, उसमें पुस्तकालय के होने तथा माता–पिता की धार्मिक स्वभाव के कारण है। इसी कारण मंदिर के आयोजनों में मैं सदैव सक्रिय रहा हूँ और जन्माष्टमी हो या होली या गोवर्धन पूजा या मंदर की वर्षगाँठ का उत्सव हो, सबमें सक्रियता से हिस्सा लेता। जन्माष्टमी के अवसर पर तो हम भगवान श्रीकृष्ण की झाँकियाँ लगाते, बाग में जाकर फूल पत्ती लाते और सारा दिन झाँकियाँ लगाने में लगा देते और उसे हजारों लोग देखने आते। रामलीला के अवसर पर मैं एक बार हनुमान की वानर सेना का सैनिक बना था। उस समय मेरी आयु 10–12 वर्ष रही होगी। रामलीला के कुछ आयोजन मंदिर में भी होते थे, पिताश्री और बाद में मेरे बड़े भाई उसकी संचालन समिति के सदस्य भी रहे। होली पर तो मंदिर में बड़े–बड़े ड्रमों में रंग घोला जाता, चूना डाला जाता और घर–घर जाकर होली खेलते और होली जलाने के लिए घर–घर से लकड़ी इकट्ठी करते और सबसे ऊँची होली जलाने में गर्व का अनुभव करते। शहर में हमारा परिवार सेठजी का परिवार के रूप में प्रसिद्ध था। शहर में चार–पाँच परिवार ही मारवाड़ियों के थे और उनका सम्मान था। शहर में मंदिर तथा पुरानी हवेली होने तथा पिताश्री के सीधे सरल स्वभाव के कारण सदैव सम्मान मिला और मुझे याद नहीं कि कभी इसके विपरीत मेरी ओर से कोई काम किया गया हो। मुहल्ले में बुजुर्ग चौपड़ खलते तो मैं कभी–कभी बैठ जाता और चौपड़ खेलते–खेलते इतना सिद्धहस्त हो गया था कि कौड़ियाँ मेरे अनुसार ही पड़ती थी। ये बुजुर्ग मेरे पिता के मित्र थे, पर सभी ने हमेशा मुझे अपने साथ प्रेम से खेलने दिया और आरंभ में तो उन्होंने चौपड़ की शिक्षा दी थी। अपनी किशोरावस्था में मैंने खूब पतंग उड़ाई, घर में पतंगे बनाई, मांझा तैयार किया, गोली कंचे खेले, गिल्ली–डंडा खेला और एक दो बार ताश भी खेला। एक बार शायद 1954–55 की बात है, बहुत तेज भूकंप आया तो मैं और मेरा बड़ा भाई नवल, जो बाद में इंजीनियर बना तथा अपनी गृहस्थी छोड़कर संन्यासी हो गया था, हमदोनों निकलकर मुहल्ले में लोगों की मदद के लिए पहुँचे। इसी

प्रकार एक बार काली नदी में जबर्दस्त बाढ़ आयी तो मैंने अपने दोस्तों के साथ अनेक लोगों को पानी से घिरे घरों से निकालकर बाहर लाये। कहने का अभिप्राय यह है कि समाज के प्रति संवेदनशीलता किशोरावस्था से ही जन्म ले चुकी थी और सेवा करना अच्छा लगता था। इन सब प्रवृत्तियों ने मुझे बहुत प्रभावित किया है।

मुझे अपने बचपन की कुछ घटनाएँ एवं प्रसंग याद है, लेकिन बहुत बड़ी मात्रा में स्मृति से लुप्त हो गयी है। मुझे पहली याद अपने बड़े भाई के 1945 में हुए विवाह की है, जब मैं 7 वर्ष का था। बड़े भाई का विवाह कानपुर के भरतिया परिवार में हुआ था और बरात रेल से गई थी। बुलंदशहर से सीधी रेल कानपुर नहीं जाती थी। खुर्जा रेल स्टेशन से एक डिब्बा रिजर्व कराया गया था और उससे बरात कानपुर पहुँची थी। मुझे अपने बचपन के स्कूल की याद है। मैं ऊपरकोट स्थित पाठशाला में 1 और 2 कक्षा का छात्र था। स्कूल की घंटी चर्च जैसी थी, जो रस्सी से खींचकर बजाई जाती थी और मुझे याद है कि मैं जल्दी पहुँचकर इस घंटी को बजाने में गौरव का अनुभव करता था। कक्षा में बैठने, तख्ती कलम का उपयोग करने तथा पाठ याद करने आदि की थोड़ी–बहुत याद बनी हुई है। इसी समय मुझे अपनी बड़ी बहन के विवाह का स्मरण है। मेरे जीजाजी श्रीनंदन प्रसाद सेकसरिया हाथी पर बैठकर विवाहस्थल तक आए थे और उस समय शहर मं बहुत से लोग उसे देखने आये थे। इसके बाद भारत के विभाजन की याद है। उस समय मैं 9–10 वर्ष का रहा था। हमारी हवेली से कुछ ही दूरी पर मुस्लिमों की सराय थी और वह अल्लाह हो अकबर के नारे लगा रहे थे। मुहल्ले के आसपास के काफी लोग हमारी हवेली पे आ गये थे, क्योंकि वह पूरे मुहल्ले में सबसे सुरक्षित जगह थी। वह 100 साल पुरानी थी, पर उसकी दीवारें 24 ईंच की मजबूत थीं, जो आजतक उसी रूप में खड़ी हैं। हवेली में एकत्र लोगों ने अपनी सुरक्षा के लिए छत पर ईंट–पत्थर मिर्च आदि इकट्ठे कर लिये थे और एक ऐसी रस्सी बाँध दी गई थी, जिससे कोई बचाव न होने पर उसका उपयोग किया जा सके, पर वैसा अवसर नहीं आया और कैप्टिन भगवान सिंह, जो जिले के कलक्टर थे और जो बाद में पीजी में भारत के राजदूत बने, उन्होंने केवल दो सिपाहियों के साथ मुस्लिम नेता को गिरफ्तार कर लिया और नगर मे शांति हुई। मुझे याद है कि कैप्टिन भगवान सिंह को शहर के लोग देवता की तरह पूजते रहे, क्योंकि उन्होंने मुस्लिम दंगाइयों से शहर की रक्षा की थी। वे जब दिल्ली म्युनिसिपैलिटी के कमिश्नर बनकर आए, तब मेरा उनसे संपर्क बना रहा। उनके बाद उनका बेटा अजय सिंह भी फौजी में राजदूत बना, जिसका अभी देहांत हुआ है। वैसे हमारे शहर में कभी कोई सांप्रदायिक दंगा नहीं हुआ था और उस घटना के बाद भी साम्प्रदायिक सद्भाव बना रहा, जो आज तक बना हुआ है। एक और बात जो 1952 की है। उस समय 'भारतीय जनसंघ' बन चुका था और एक चुनाव में मैं और मेरा एक मित्र उसके एजेंट बनकर शहर के निकट गाँव मैं चुनाव के समय गये थे और हमने पार्टी के लिए काम किया था। उस समय लौटने के लिए कोई सवारी नहीं मिली, तो हम मीलों पैदल चलकर रात को घर पहुँचे। मेरा परिवार में पिताश्री कांग्रेस से जुड़े थे और मेरे बड़े भाई राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से और उनके कारण हम सभी भाई इसी विचारधारा से जुड़ते चले गये।

मेरी आरंभिक शिक्षा बुलंदशहर के डी.ए.वी. इंटर स्कूल में हुई। मेरा दाखिला कक्षा 3 में कराया गया। मैं और मेरा बड़ा भाई हम दोनों घर से पैदल स्कूल जाते और शुरू में साथ–साथ लौटते। मैं कई बार अपने सहपाठियों के साथ घर लौटता और खेतों में से होकर आम, अमरूद, मटर तोड़ते खाते शैतानी करते वापस आते। कभी–कभी किसानों की बाट भी खानी पड़ती, पर फिर यही कारण चलता रहता। मैंने 1956 में इसी स्कूल से इंटरमीडिएट परीक्षा पास की और स्कूल में सर्वाधिक अंक आये। इंटरमीडिएट कक्षा में मेरे पास एक विषय मिलिट्री साइंस था। इसमें अच्छे अंक आते थे, तो छात्र इसे ले लेते थे। मेरी प्लटून में 30 छात्र थे और मैं उसका कमांडर था तथा 26 जनवरी के एक कार्यक्रम में मेरे कमांड में ही प्लटून ने सेल्यूट दिया था। उस आयु में बड़ा गौरव अनुभव किया। मुझे अपने कुछ अध्यापकों की याद है, जो बड़ी गंभीरता तथा आत्मीयता से पढ़ाते थे और पिताश्री को बताते भी रहते थे। उनका ऋण मैं आजतक अनुभव करता हूँ। इंटरमीडिएट के बाद उस समय बुलंदशहर में बी.ए. के शिक्षण की कोई व्यवस्था नहीं थी। अतः मैं अपनी बड़ी बहन के पास कानपुर गया और वहाँ के डी.ए.वी. कॉलेज में दाखिला ले लिया, लेकिन एक महीने बाद ही बुलंदशहर में ही डी.ए.वी. डिग्री कॉलेज खुला और मैंने कानपुर को छोड़कर इसी कॉलेज में दाखिला ले लिया। इस कॉलेज का हमारा पहला बेच था, इस कारण कानपुर जैसी सुविधा अनुभवी अध्यापक तथा पुस्तकालय तो न था, पर अपना शहर तो था और पुराने सहपाठी थे और अध्यापक भी बहुत अच्छे थे। हिन्दी में डॉ. हरि सिंह शास्त्री ने हमें हिन्दी साहित्य पढ़ाया और मैं कह सकता हूँ कि उन्होंने मेरे अंदर साहित्य के बीज बो दिये। मैं साहित्य परिषद् का सचिव रहा और एक बार जयशंकर प्रसाद बनकर कविगोष्ठी में उनकी 'आँसू' कविता का पाठ किया। उस समय प्रसाद सबसे प्रिय लेखक थे और 'आँसू' खंडकाव्य मुझे पूरा याद था। हम कुछ दोस्तों का एक गुट बन गया था, जो शहर में अपना रोब रखता था। मैं इसका हिस्सा जरूर रहा, पर मैं मर्यादा से बाहर कभी नहीं गया, लेकिन आज सोचता हूँ कि मुझे इससे दूर रहना चाहिए था। वह ऐसी उम्र थी, जब तर्क की भाषा समझ में नहीं आती है। यह बहुत थोड़ा काल था और मैं बी.ए. करने के तुरंत बाद दिल्ली चला आया था। शहर छूटा तो यारी दोस्ती भी छूट गयी और जीवन संघर्ष के रास्ते खुल गये। मेरे लिए यह नई दुनिया थी, छोटे शहर से बड़े शहर की, घरबार छोड़कर अकेल ही अनजान डगर पर पथरीली काँटेदार सड़क पर चलते हुए एक मुकाम, एक झोंपड़ी बनाने की, जिसकी कल्पना भी कभी कल्पना में नहीं आई थी। अपनी जन्मभूमि छोड़ी, हवेली छोड़ी तो नई दुनिया तो बसानी ही थी, पर यह सब भविष्य के अंधकार में समाया था।

मैंने बी.ए. करके दिल्ली की राह ली। मैंने तय किया कि एम.ए. करना है और वह बुलंदशहर में हो नहीं सकता, तो दिल्ली ही सबसे आसान लगा। दिल्ली में मेरी एक और बड़ी बहन सावित्री देवी का विवाह हैदरकुली मुहल्ला चांदनी चौक के व्यापारी पुत्र श्रीसत्यनारायण पोद्दार से हुआ था। मेरे जीजाजी तथा बहन से मुझे अनुमति मिली तो मैं जुलाई 1958 में दिल्ली आ गया, यह सोचकर कि जीवन का रथ हो या बैलगाड़ी, राजधानी की सड़कों पर चलाकर ही लक्ष्य पहुँचना है। बहन बहनोई का सहारा मिला तो हिम्मत बँधी और एक दफ्तर में 90 रुपये महीने की नौकरी मिली, जो उस समय एक आदमी के लिए जीवन चलाने के लिए काफी होता था। मैंने कमलानगर में 30 रुपये महीने का एक कमरा किराये पर लिया और वाले में खाने इंतजाम किया और शेष राशि महीने के लिए काफी थी। उस समय गर्मी में कई बार पार्क में सोता था। रात को कुत्ते भोंकते तो डर लगता था, पर मैं पढ़ाई के लक्ष्य से आया था और तभी मुझे कैम्प कॉलेज में एकॉनोमिक्स में दाखिला मिल गया। तब किसी ने सलाह दी कि इससे ही आगे बढ़ा जा सकता है, पर पहली परीक्षा में 50प्रतिशत अंक आए, तो मैंने कॉलेज जाना छोड़ दिया, क्योंकि मैं समझता था कि प्रथम श्रेणी के बिना कुछ नहीं होगा। उस समय किसी ने समझाया होता कि इस विषय में इतने अंक ही काफी होते हैं, तो शायद मैं उसी ओर रहता और हिन्दी का मुँह न देखता, पर नियति को कुछ और ही करना था। मेरे एकॉनोमिक्स छोड़ने के निर्णय के पहले मुझे यह मालूम हो गया था कि दिल्ली विश्वविद्यालय अगले वर्ष 1959 से ईवनिंग में एम.ए. हिन्दी की कक्षा शुरू करेगी तो मुझे कैम्प कॉलेज छोड़ने का आधार मिल गया और मैंने बीच में ही उसे छोड़ दिया। मेरा यह फैसला मेरी नियति तय करनेवाला बन गय। इसी बीच में मुझे एक सरकारी नौकरी मिल गई और कुछ ऐसा संयोग था कि उसका दफ्तर दिल्ली विश्वविद्यालय के करीब था। दिल्ली विश्वविद्यालय के कला संकाय में एम.ए. हिन्दी की कक्षा जुलाई 1959 से शुरू हुई, पर दाखिले के लिए डॉ. दशरथ ओझा ने मेरा इंटरव्यू लिया, क्योंकि मैं ऑनर्स करके नहीं आया था। नियति ने इस प्रतिकूलता को भी पराजित किया और दफ्तर में काम करने के साथ मैं दो साल तक पढ़ता रहा तथा डॉ. नगेन्द्र, उदयभानु सिंह, सत्यदेव चौधरी, तारकनाथ बाली आदि से शिक्षा प्राप्त की। कुछ समय तक मोहन राकेश भी अध्यापक रहे, पर वे जल्दी ही

छोड़कर चले गये, लेकिन इस अध्ययनकाल में सर्वश्री रामधारी सिंह दिनकर, महादेवी वर्मा, नंददुलारे वाजपेई, हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि बड़े–बड़े लेखकों से संपर्क में आने का मौका मिला। मैं 'साहित्य परिषद्' का सचिव बना तो साहित्य के कई कार्यक्रमों की आयोजना का अनुभव और साहित्य की समझ का भी विकास हुआ। एम.ए. में प्रथम श्रेणी लानी है, इसके लिए जी तोड़ मेहनत की और हम चार सहपाठी सवेरे 5 बजे दिल्ली विश्वविद्यालय के मैदान में बैठकर बिहारी का अध्ययन करते थे और डॉ. नगेन्द्र उस समय सवेरे की सैर पर निकलते थे और हमें इस तरह पढ़ता देखकर आशीर्वाद देते थे। परीक्षा का परिणाम आया तो मुझे प्रथम श्रेणी मिला पर मेरे अन्य तीन सहपाठी द्वितीय श्रेणी में रह गये। डॉ. नगेन्द्र की खूबी यह थी कि वे अपने प्रथम श्रेणी के छात्रों को सम्मान देते थे। मेरा लेक्चरर के लिए पहला इंटरव्यू कश्मीर विश्वविद्यालय के लिए श्रीनगर में था और नगेन्द्रजी एक्सपर्ट थे। कुलपति शायद पनिक्कर थे। उन्होंने कुछ सवाल किये और नगेन्द्र जी से पूछने के कहा तो उन्होंने उत्तर दिया कि गोयनकाजी मेरा विद्यार्थी रहा है, मैं इनकी क्षमता को जानता हूँ। अत: मुझे कुछ पूछने की आवश्यकता नहीं है। मेरी नियुक्ति नहीं हुई, पर उनके इस विश्वास ने मुझे बड़ी ताकत दी और जाना कि सच्चा गुरु कैसा होता है। बाद में उनके ही आशीर्वाद से सितंबर 1962 में दिल्ली कॉलेज ईवनिंग में हिन्दी का प्राध्यापक नियुक्त हुआ। इस नौकरी से मेरी बैलगाड़ी पक्की सड़क पर आ गयी थी, लेकिन ईवनिंग की नौकरी से मन दु:खी था। ईवनिंग कॉलेज दूसरी श्रेणी के माने जाते थे और वहाँ से उच्च पदों तक पहुँचना असंभव था। यद्यपि काफी बाद में मेरे साथी बने सुधीश पचौरी दिल्ली विश्वविद्यालय में सीधे प्रोफेसर बने। ऐसा चमत्कार केवल प्रगतिशीलों के साथ ही होता रहा है। मैंने हिन्दू कॉलेज भी जाने का प्रयास किया, पर वहाँ ऐसा चक्र चलाया गया कि एक अध्यक्ष रहे दामाद की वहाँ नियुक्ति की गई। मुझे तो दिल्ली विश्वविद्यालय में रीडर और बाद में प्रोफेसर बनने से भी रोका गया। प्रोफेसर के इंटरव्यू में मेरा चयन हो गया तो उसमें बैठे प्रगतिशील अध्यक्ष ने कुलपति को धमकी दे दी और फिर किसी की नियुक्ति नहीं की गई। उस समय इंद्रकुमार गुजराल प्रधानमंत्री थे और शिक्षामंत्री एक प्रगतिशील महोदय थे। ऐसे ही एक और चमत्कार का उल्लेख जरूरी है, जिससे विश्वविद्यालय में होनेवाले भ्रष्टाचार की कुछ झलक मिल जाएगी। एक बार मेरा चयन रीडर के पद पर हो गया, लेकिन नबर एक पर डॉ. उमाकांत गोयल को रखा गया, जो न तो प्रत्याशी थे और न ही इंटरव्यू के लिए बुलाये गये थे। इंटरव्यू में बैठे हिन्दी प्रोफेसरों की नैतिकता, ईमानदारी और ज्ञान के प्रति निष्ठा कितनी फिसलन भरी होती है और अपने स्वार्थों के लिए कैसे अयोग्य तथा अनधिकारी को ऊँचे पदों पर पहुँचा देते हैं। मेरे साथ ऐसे कई उदाहरण हैं, जिनमें मेरे प्रगतिशील न होने के कारण मुझे दंडित किया गया, पर प्रतिकूलता मँझधार में डूबो नहीं सकी और मेरी नाव झंझावातों को पार करती हुई निरंतर चलती रही।

मेरे प्राध्यापक होने के साथ एक साहित्यिक रुचि की नवयुवती से मेरा विवाह हो गया और साहित्य के कार्यों में अब और भी समय देना आसान हो गया। परिवार की चिंता से मुक्त हो गया। मेरी पत्नी कुसुम गोयनका ने अच्छी बाल कहानियाँ लिखीं और वे 'धर्मयुग' तक में भी छपीं, साहित्य तो मुझसे ज्यादा पढ़ती रहीं, लेकिन घर–गृहस्थी के लिए उन्होंने अध्ययन तक सीमित कर लिया। एक स्त्री अपना बलिदान करती है तो पुरुष कुछ कर पाता है।

मुझे प्रेमचंद पर अपने शोध–प्रबंध पर पीएच.डी. की उपाधि 1972 में मिली। डॉ. रघुवंश ने बहुत ही अच्छी रिपोर्ट लिखी थी। इसके बाद मुझे क्या करना है, यह विचार मथ रहा था कि एक रात को 'प्रेमचंद विश्वकोश' की कल्पना उभरी, सवेरे उठकर कागज पर लिखी और अपने साथी गंगाप्रसाद विमल के साथ प्रेमचंद के बड़े बेटे श्रीपतराय से मिलकर उनकी स्वीकृति पर्याप्त की और उन्होंने विमल को इसके साथ जोड़ दिया। मैंने काम शुरू कर दिया और कुछ समय बाद गंगा प्रसाद विमल ने इस योजना से अपना नाम वापिस ले लिया तो मैं भौंचक्का रह गया, क्योंकि यह तो बीच धार में छोड़ना था। विमल मेरे अच्छे मित्र और सहयोगी थे और मैं उनसे ऐसे व्यवहार की आशा नहीं कर सकता था। इसका रहस्य मुझे काफी बाद में मालूम हुआ। इसका कारण बना 1973 के आसपास दिल्ली में आयोजित 'प्रगतिशील लेखक संघ' का अधिवेशन जिसमें नये–नये बने कामरेड डॉ. सुधीश पचौरी ने गंगाप्रसाद विमल पर मुझ हिन्दुवादी तथा प्रतिक्रियावादी को श्रीपतराय से मिलाने का दोषी ठहराया और उन्हें पार्टी से निकालने का प्रस्ताव किया। यह रिपोर्ट 'आलोचना' में छपी और मैंने काफी देर बाद इसे देखी तो विमल के विमुख होने का रहस्य समझ में आया। इसका रोचक पहलू यह है कि पचौरी भी मेरे ही विभाग में थे और विमल तो थे ही, पर पार्टी के लिए अपने मित्रों–साथियों की बलि देने में कोई संकोच नहीं था, पर काफी बाद में मुझे लगा कि यह बहुत अच्छा हुआ कि विमल खुद पार्टी के डंडे के डर से हट गये, अन्यथा आगे चलकर शायद मुझे ही अकेले चलने का फैसला करना पड़ता। विमल तो पार्टी के ही आदेश पर चलते और मुझे तो प्रमाणों–दस्तावेजों के आधार पर चलना था। नियति ने फिर मेरा साथ दिया और 'प्रेमचंद विश्वकोश' मेरे नाम से छपा और उसने मुझे 'प्रेमचंद स्कॉलर' तथा 'प्रेमचंद का बॉसवेल' के रूप में प्रसिद्ध कर दिया।

प्रेमचंद की जन्म शताब्दी आनेवाली थी। मैंने इस अवसर के लिए एक 'प्रेमचंद जन्म शताब्दी राष्ट्रीय समिति' बनायी जैनेन्द्र कुमार इसके अध्यक्ष और प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी अध्यक्ष बनीं। मैं इसका संस्थापक महासचिव था और मैं ही गतिविधियों को संचालित करता था। वैसे इस समिति के महादेवी वर्मा, उमाशंकर जोशी, मोहम्मद हसन, कवर रईस, वेदप्रताप वैदिक, विजयेन्द्र स्नातक, नगेन्द्र आदि अनेक प्रतिष्ठित लेखक सदस्य थे और राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक कार्यक्रमों को आयोजित करने का लक्ष्य था। नई दिल्ली के फिक्की सभागार में बड़ा सम्मेलन किया और राष्ट्रपति हिदायतुल्ला साहब ने इसका उद्घाटन किया। जैनेन्द्रजी के मन में मेरे विरुद्ध उनके कुछ वरिष्ठ मित्रों, लेखकों, प्रोफेसरों ने दुर्भावना भर दी थी और वे इस कारण सहयोग नहीं कर रहे थे। इस कार्यक्रम में आये अमृतराय आदि का भुगतान करना था और इसके लिए मुझे तथा प्रो.स्नातक को घर से धनराशि ले जानी पड़ी, पर अंत में जैनेन्द्रजी ने चैक पर हस्ताक्षर किये और बैंक से रुपये निकालकर भुगतान किया। जैनेन्द्र जी के असहयोग ने मुझे बहुत पीड़ित किया, वे इंदिर गाँधी से दो बार मिले, पर मुझे नहीं ले गये और हम सरकार से एक पैसा भी न ले सके। केन्द्रीय सरकार ने हमें कनाट प्लेस में एक भवन प्रेमचंद समिति के लिए दिया, पर जैनेन्द्र जी ने उसका कब्जा लेने नहीं दिया, जबकि मैं कहता रहा कि आप सपरिवार उसमें जाकर रहें। इस व्यवहार से 'प्रेमचंद अकादमी' तथा 'प्रेमचंद संग्रहालय' तथा 'प्रेमचंद' पत्रिका की सारी योजनाएँ ठप हो गयीं। मेरे प्रस्ताव पर मॉरिशस में प्रेमचंद शताब्दी समारोह आयोजित हुआ तो भारत सरकार ने मुझे तथा जैनेन्द्र जी को भारत सरकार का प्रतिनिधि बनाकर भेजा, पर वहाँ जैनेन्द्र जी ने भारतीय राजदूत से पूछा कि गोयनका यहाँ कैसे आया। इसपर राजदूत ने उन्हें पत्रव्यवहार दिखाया कि यह कार्यक्रम गोयनका के प्रस्ताव पर ही हो रहा है और आप भी गोयनका के प्रस्ताव पर आए हैं। राजदूत मेरे शहर के थे, इस कारण उन्होंने मुझे इस घटना की जानकारी दी, पर मैं आज भी कहता हूँ कि जैनेन्द्र जी ऐसे नहीं थे। उन्हें मेरे बारे में गलत बातें बताई गई थी कि वह मारवाड़ी है, इसपर यकीन न करें। इस संबंध में उन्होंने मुझे अमेरिका से पत्र लिखा था कि मुझे अपना कद छोटा करना होगा, तभी समिति चल सकेगी। मैं चपरासी बनकर काम करूँ तथा समिति उन लोगों को चलाने दूँ, जिनका प्रेमचंद से कोई लेना–देना नहीं था, यह मुझे मंजूर नहीं था। इसका परिणाम यह हुआ कि जैनेन्द्रजी ने एक और अंतर्राष्ट्रीय प्रेमचंद समिति बनाई और अपने घर पर उसका बोर्ड लगा दिया। उन्होंने इंदिरा गाँधी का संरक्षक बननेवाला पत्र माँगा तो मैंने मना कर दिया, क्योंकि वह मेरे द्वारा स्थापित समिति के लिए लिखा गया था। नतीजा वही हुआ, जो ऐसी स्थिति में होता है। जैनेन्द्र जी की नयी समिति बिना कुछ किये खत्म हो गयी और मेरी निर्मित उनके असहयोग से। मैं आज तक नहीं समझ पाया कि मैं कहाँ कितना दोषी था, पर एक बड़ा अफसोस हमेशा रहा कि 'प्रेमचंद अकादमी' तथा संग्रहालय नहीं बना पाया। हिन्दी लेखकों के छोटे–बड़े तथा ऊँच नीच भाव ने प्रेमचंद को स्थायी श्रद्धांजलि देने

की कोशिश को पैदा ही नहीं होने दिया। मेरे जीवन का स्वप्न पूरा नहीं हुआ, लेकिन भविष्य में कोई–न–कोई प्रेमचंद प्रेमी इसे अवश्य पूरा करके उनके महान योगदान को तथा उनकी भारतीयता को भावी पीढ़ियों तक पहुँचाने का इंतजाम करेगा। इस असहयोग के बावजूद मैंने लगभग 40 पत्रिकाओं के प्रेमचंद विशेषांक निकलवाये, सामग्री दी, डाकटिकट निकलवाया। साहित्य अकादमी प्रांगण में 'प्रेमचंद प्रदर्शनी' लगवाई और कुबेरदत्त के साथ दूरदर्शन के लिए वृतचित्र बनवाया और अनेक लेख लिखे और मूल पांडुलिपियाँ आदि प्रकाशित कराये। मॉरिशस में 'प्रेमचंद प्रदर्शनी' का उद्घाटन वहाँ के प्रधानमंत्री डॉ. शिवसागर राम गुलाम ने किया और बड़ी प्रशंसा की।

मेरे ऊपर विपत्तियों का पहाड़ कम नहीं हुआ। इमरजेंसी में इंदिरा गाँधी ने जेल में बंद करवा दिया और कई महीने तिहाड़ जेल में रहा। इससे छूटा तो प्रगतिशीलों का जो आक्रमण सुधीश पचौरी ने किया था, वह मलय, शिवकुमार मिश्र तथा नामवर सिंह आदि से होता हुआ देश के सभी प्रगतिशील लेखक संघों तक फैल गया। ये प्रगतिशील 'आलोचक' कामरेड प्रेमचंद के खुद को वारिस मानते हैं और प्रेमचंद नामक पूँजी पर पूँजीपतियों की तरह उसपर एकाधिकार चाहते और मानते रहे हैं। यही कारण है कि जब मैंने प्रेमचंद के जीवन, साहित्य और विचार के संबंध में दस्तावेजों के आधार पर नये तथ्यों का उद्घाटन किया तो ये मधुमक्खी की तरह मुझपर टूट पड़े और गंदी गालियों एवं क्रूर आरोपों से घायल करने का कोई मौका नहीं छोड़ा। असल में इनकी सारी मान्यताएँ धराशायी हो गयीं और इनकी राजनीतिक साजिश खुलकर सामने आ गयी। इनके झूठ को पहली बार किसी ने सप्रमाण चुनौती दी थी और इनके पास कोई उत्तर नहीं था, सिवाय धमकाने, डराने तथा बदनाम करने के। हैदराबाद में वेणु गोपाल ने तो देखने की धमकी दी तो वह केवल धमकी देकर ही रह गये। मैंने उन्हें शरीर या बुद्धि से संवाद करने का अवसर दिया, पर वे मुँह फेरकर चले आते। यह स्थिति लगभग 40 साल तक चलती रही और मैं सबका जवाब देता रहा और वे चुप होते गये, पर फिर कुछ दिन बाद एक नये कामरेड गाली देते नजर आते। आज से तीन साल पहले दिल्ली के विश्व पुस्तक मेले में प्रेमचंद पर एक पुस्तक का लोकार्पण करते हुए डॉ. नामवर सिंह ने मुझपर कृपा करते हुए कहा कि गोयनका मारवाड़ी सेठ है, वह लिखना पढ़ना क्या जाने! वह प्रेमचंद को हिन्दू बना रहा है और हम उनका अहंकार चूर–चूर कर देंगे। यह खबर मैंने 'जनसत्ता' अखबार में पढ़ी, तो यकीन नहीं हुआ कि नामवर जी ऐसा मेरे बारे में कह सकते हैं। वे जब भी मिलते, मेरी प्रशंसा करते, मंच से भी करते और वीरभारत तलवार को प्रेमचंद पर काम करने से पहले मेरे पास भेजा और 'आलोचना' में 'प्रेमचंद विश्वकोश' की लंबी समीक्षा प्रकाशित की। मैं कई दिन परेशान रहा और जब इस खबर को वापस नहीं लिया गया तो मैंने 'नामवर सिंह का आलोचना विवेक' शीर्षक लेख लिखा जो 'जनसत्ता' में ही छपा। मैंने लिखा कि साहित्य का धर्म जाति में न बाँटें, मारवाड़ी होना अपराध नहीं है। सेठ का अर्थ श्रेष्ठ है और सेठ हर जाति में हो सकता है। मैंने लिखा कि आप तो ठाकुर हैं और प्रेमचंद ने ठाकुरों का कैसा चरित्र खींचा है, यह आप जानते ही हैं। दूसरे प्रेमचंद तो पहले से ही हिन्दू थे, मैं उन्हें हिन्दू क्या बनाऊँगा। इसके बाद वे मुझे मिले तो बोले कि आप मुझसे नाराज हो गये, पर मैंने कहा कि आप मुझसे बहुत बड़े हैं और यदि मुझसे कोई गलती हुई है तो माफी चाहता हूँ। इसपर उन्होंने कहा–गोयनका जी! गलती तो मुझसे हुई है, अतः माफी तो मुझे माँगनी चाहिए। इससे नामवरजी बहुत बड़े हो गये और जब उनका देहांत हुआ तो मैं बहुत दुःखी था। यदि नामवर सिंह कम्यूनिष्ट पार्टी के साहित्यिक प्रवक्ता नहीं होते तो वे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की जगह के हकदार हो सकते थे। नामवर सिंह के जाने से प्रगतिशील युग का अंत हो गया और प्रेमचंद का भारत बोध और भारतीयता ही केन्द्र में स्थापित हो गयी। प्रेमचंद ने साहित्य के द्वारा भारतीय आत्मा की खोज का संकल्प लिया। इसी भारतीय आत्मा की खोज में गाँधीवाद, मार्क्सवाद, समाजवाद, राष्ट्रवाद और सांस्कृतिक चेतना समाहित हो जाती है। प्रेमचंद को इस समग्रता से समझा जा सकता है।

इन सब प्रतिरोधों, आरोपों तथा प्रतिकूल धारा के बीच कई बार नासमझ विरोधियों ने डूबाने की पूरी कोशिश की, लेकिन हिन्दी के अनेक प्रतिष्ठित लेखकों, प्रोफेसरों, संपादकों तथा पाठकों के समर्थन ने मुझे तूफानों में भी नौका चलाने की ताकत दी। एक ओर प्रगतिशील गुट विरोध की हुंकार लगा रहा था और दूसरी ओर जैनेन्द्र, श्रीनारायण चतुर्वेदी, धर्मवीर भारती, प्रभाकर माचवे, विष्णु प्रभाकर, राजेन्द्र यादव, सर्वेश्वर लाल सक्सेना, शिवमंगल सिंह 'सुमन', मृणाल पांडेय, विष्णुकांत शास्त्री, चन्द्रकांत वांदिवडेकर, विद्यानिवास मिश्र, विजयेन्द्र स्नातक, कल्याणमल लोढा, रमेश कुंतल मेघ, देवेश ठाकुर, विनय आदि अनेक लेखकगण मेरे प्रेमचंद के कार्यों पर प्रशंसा का शंखनाद कर रहे थे। इसके अतिरिक्त पाठकों का तो एक पूरा समूह ही देश में बन गया और मैं आश्चर्यचकित था यह देखकर कि हिन्दी में आलोचक शोधार्थी के भी क्या पाठक होते हैं, इससे मुझे अद्भुत शक्ति मिली और हर छोटे–बड़े झंझावातों को झेलना आसान हो गया।

मेरे जीवन में एक नया अध्याय तब जुड़ा जब नरेन्द्र मोदी की केन्द्र में सरकार बनी और मुझे भारत सरकार ने केंद्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा का उपाध्यक्ष बनाने का न्योता मिला। मुझे सुखद आश्चर्य हुआ कि मुझपर किसकी कृपा हुई। मैं केन्द्रीय मंत्री श्रीमती स्मृति ईरानी से मिला, जिनके आदेश पर यह नियुक्ति हुई थी। मैंने आभार व्यक्त किया और यथाशक्ति संस्थान को आगे बढ़ाने का विश्वास दिलाया और उन्होंने भी पूरा सहयोग देने की बात कही। मैं सितम्बर 2014 से फरवरी 2020 तक उपाध्यक्ष रहा और अनेक महत्वपूर्ण काम हुए। हिन्दी की दो पत्रिकाओं की जगह आठ पत्रिकाएँ शुरू कीं और पूरे देश में साथ प्रवासी साहित्य को भी जोड़ा, 40 लघु पत्रिकाओं को 50 हजार रुपये वार्षिक अनुदान दिया जाने लगा, हिन्दी भाषा और साहित्य के 14 पुरस्कारों को 26 किया गया और एक लाख की राशि पाँच लाख की गई, जो सरकार में असंभव बात थी, लेकिन स्मृति ईरानी ने मेरा प्रस्ताव मान लिया। हिन्दी विश्वकोश की मृतप्राय योजना को पुनर्जीवित किया और उसे 16 खंडों में बनाया। इसके 3 खंड छप गये, शेष का भविष्य नये उपाध्यक्ष देखेंगे, लेकिन यह उल्लेखनीय है कि इसके प्रधान संपादक प्रो. इन्द्रनाथ चौधरी बिना किसी पारिश्रमिक के कार्य करते रहे और लाखों की राशि नहीं ली। हिन्दी की बोलियों के साथ भी शब्दकोश बनाते जा रहे हैं और 15 छप चुके हैं। आगरा परिसर में भव्य अटल वाजपेयी सभागार बनवाया, शिलांग तथा हैदराबाद में नये भवनों का निर्माण हुआ और कार्यालय, हॉस्टल आदि का नवीनीकरण हुआ, कर्मचारियों का 35प्रतिशत वेतन बढ़ाया और महत्वपूर्ण गोष्ठियाँ हुईं, लेकिन सोलर एनर्जी तथा लिफ्ट का काम नहीं हो सका। इनके क्रियान्वयन में निदेशक प्रो. नंदकिशोर पांडेय की सक्रियता तारीफ के लायक है। एक बड़ा काम और नहीं हो पाया। केन्द्रीय हिन्दी संस्थान को केन्द्रीय विश्वविद्यालय बनाने के प्रयास शुरू किये थे और सहमति बन चली थी, पर अब भविष्य ही उसका भविष्य तय करेगा। अभी संस्थान में बहुत करना शेष है और उसके कर्मक्षेत्र, ज्ञानक्षेत्र तथा प्रतिष्ठा को बढ़ाना जरूरी है।

प्रेमचंद के अतिरिक्त मैंने प्रवासी साहित्य, लघुकथा, रचनावली आदि के संपादन के भी कोई काम किये, जो साहित्य समाज में स्वीकृत हुए। प्रवासी साहित्य को मैंने 40 साल दिये और 12 किताबें प्रकाशित हुईं। इससे प्रवासी साहित्य मुख्य धारा का अंग बना और प्रतिष्ठित हुआ। विगत पाँच विश्व हिन्दी सम्मेलनों में सरकारी समितियों का सदस्य रहा और प्रवासी साहित्य के संकलन प्रकाशित कराए। मॉरिशस के हिन्दी लेखक अभिमन्यु अनत की हीरक जयंती पर 12 पत्रिकाओं के विशेषांक निकलवाये, उसे साहित्य अकादमी की मानद सदस्यता दिलवाई और 40 प्रवासी लेखकों की पुस्तकों की भूमिकाएँ लिखीं और प्रकाशित कराईं। अभिमन्यु की ही 15 पुस्तकों की भूमिकाएँ लिखीं। केन्द्रीय हिन्दी संस्थान से हर साल दो प्रवासी लेखकों को पुरस्कृत कराया। ऐसे बहुत से काम मैंने प्रवासी लेखकों के लिए किये। आज देश में सर्वत्र प्रवासी लेखकों का सम्मान है और उनका पाठकवर्ग है। लघुकथा पर मेरी किताब 'लघुकथा का व्याकरण' छपी तो उसका स्वागत हुआ।

आलेख

महिला सशक्तिकरण दशा और दिशा

डॉ. लाखा राम चौधरी
कार्यालय प्रधान महालेखाकार
हरियाणा

आज नारी संक्रमणकाल से गुजर रही है। उसका एक पाँव घर से बाहर निकला हुआ है, लेकिन दूसरा अभी भी रसोई की चौखट के अंदर है। शिक्षा ने उसके क्षितिज का विस्तार किया, पर घर–परिवार की लक्ष्मणरेखा उसे अब भी घेरे हुए है, अब भी पिता की दृष्टि में दान और पति की दृष्टि में वह भोग की वस्तु है। आज नारी स्वतंत्रता आंदोलन का जो नारा दिया जा रहा है, वह नारी स्वच्छंदता की वकालत ज्यादा कर रहा है, जिनके कारण नारी की गरिमा खंडित हो रही है। मनुष्य समाज जिन पहियों के बल पर अपनी जीवन यात्रा करता है, वे पहिए हैं पुरुष और महिला, नर और नारी दोनों न केवल एक दूसरे के पूरक हैं, बल्कि एक के बिना दूसरे का अस्तित्व भी असंभव है। इनमें एक श्रम है, दूसरी उस श्रम की प्रेरणा शक्ति। एक बाहरी परिवेश का निजता है, तो दूसरी आंतरिक और घरेलू मोर्चे की अधिष्ठात्री, लेकिन दोनों के आपसी संबंधों के बीच समानता के संतुलन का अभाव साफ–साफ दिखाई देता है। पुरुष सदैव महिला को अपनी अधीन रखता है। नारी जाति स्नेह और सौजन्य की देवी है। ईश्वर के बाद माता या जननी का स्थान निर्धारित होता है। नर का अस्तित्व नारी के बिना संभव नहीं है। जन्मदात्री तो वह होती है। स्नेह, दुलार, करुणा, आशिष और सेवा की संजीवनी पिलाती है। वह वंदनीय होती है। वह पुरुष की निर्मात्री है। किसी भी राष्ट्र का उदय नारी जाति के उत्थान से ही होता है। नारियाँ पुरुष की उन्नति–अवनति, आदर– अनादर, सफलता–विफलता, सुख–दुख की जननी है। वह गर्भ धरण करती है, शिशु को जन्म देती है और जबतक वह अपने पैरों पर नहीं चल पाता और अपने हाथों से नहीं खा पाता, उसे अपनी छाती से लगाए रखती है एवं अपना मातृत्व रस पिलाती रहती है। माता के वंदनीय रूप के अतिरिक्त भी वह बहन, पत्नी, पुत्री तथा अन्य पारिवारिक रिश्तों से जुड़कर पुरुष समुदाय को जीवनदायी की स्नेह भावना से रसमय बनाती है।

पूर्व राष्ट्रपति ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के शब्दों में–''एक अच्छे राष्ट्र के बचाने के लिए महिला सशक्तिकरण एक आवश्यक पूर्व दशा है; क्योंकि जब एक महिला सशक्त होती है, तो समाज में स्थायित्व सुनिश्चित होता है। महिला सशक्तिकरण आवश्यक है; क्योंकि उनके विचार एवं मूल्य की एक अच्छे परिवार, अच्छे समाज एवं अंततः एक अच्छे राष्ट्र के विकास की अगुवाई करते हैं।''

भारत में प्राचीन काल से ही नारी की समाज में एक विशिष्ट स्थिति रही है। वेद उसे पुरुष के समकक्ष रखते हैं, उसे प्रकृति कहा गया यानी जीवन का मूलतत्व। उसे देवी, मातृशक्ति, गृहलक्ष्मी निरूपित किया गया। अरुंधती, सुलभा, मैत्रेयी, गार्गी, भारती जैसी विदुषी नारियाँ कहीं से भी उस समय के ऋषियों से कमतर नहीं थी। वीरांगना नारियों की भी भारतीय इतिहास में न जाने कितनी गाथाएँ हैं। मध्यकाल या मुस्लिम काल में पर्दाप्रथा एवं बाल–विवाह के प्रचलन के कारण अत्यन्त कम लड़कियाँ बचपन में शिक्षा प्राप्त करती थीं, परंतु शाही घरानों तथा अमीर परिवारों की लड़कियों के लिए शिक्षा की व्यवस्था थी। यही कारण है कि गुलबदन बेगम, सालिमा सुलताना, नूरजहाँ, मुमताज महल, जहाँआरा बेगम, जेबनिस्सा आदि उच्च शिक्षा प्राप्त महिलाएँ थीं। इतिहास का थोड़ा सा काल खंड छोड़ दें तो भारत में जीवन के लगभग हर क्षेत्र में स्त्रियों की सफलता और उनका सम्मान पुरुषों से कहीं कमतर नहीं दिखता। परन्तु कालान्तर में भारत में जन्म लेकर मृत्यु तक महिलाएँ भेदभाव का सामना करती है। शिक्षा, स्वास्थ्य, लिंगानुपात, आर्थिक भागीदारी आदि अनेक प्रमुख संकेतक देश में पुरुषों के मुकाबले महिलाओं की स्थिति में विद्यमान असंतुलन की ओर ही इशारा करते हैं। देश की गौरवशाली संस्कृति ने 'मातृदेवो भव' तथा 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' की घोषणा कर नारी को देवी का स्थान प्रदान किया है। परन्तु वर्तमान काल में इस मान्यता में कुछ विकृतियाँ आने लगी हैं, जिसके कारण आज 'समाज में महिला सशक्तिकरण' एक प्रमुख चुनौती बन गयी है।

नारी के बिना दुनिया का कोई अस्तित्व नहीं है। ईश्वर ने नारी की शारीरिक रचना इस प्रकार की है कि वह संसार के भविष्य की स्वयं निर्मात्री हो गयी। कई युगपुरुष हुए हैं, जो नारी के किसी–न–किसी रूप से चाहे वह माँ, बहन, पत्नी, भाभी अथवा दाई रही हो, से प्रभावित होकर महान बने हैं। नारी शनैः शनैः समय और विचारधाराओं के परिवर्तन से ज्ञात और अज्ञात कारणों से घर की ऊँची–ऊँची दीवारों में बंद होकर अविधान एवं अज्ञान के अंधकार में डुबकियाँ लगाने लगी, उसका पग–पग पर अपमान होता रहा तथा लगातार ठुकराये जाने के बावजूद भी वह जीवन की अंतिम साँस तक सामाजिक यातनाओं को चुपचाप सहन करती रही। सामान्यतया धर्म के बहाने आडम्बर और कर्मकांड से घिरने के कारण समाज में बाल–विवाह, पर्दाप्रथा, देवदासी, विधवाओं को दीनहीन दशा, सतीप्रथा, कन्यापक्ष को नीचा समझा जाना, कन्या शिशुओं का वध, नारी की उच्च शिक्षा का बहिष्कार, उत्तराधिकारी से वंचित होना और परतंत्रता जैसी सामाजिक कुरीतियों से पराधीन भारत को इतना निम्न बताया जा रहा है कि वह नारी की पीड़ा को समझ न सकता और आज स्वतंत्रता के 65 वर्ष बाद भी बार–बार सचेत किए जाने पर भी भारत में पूर्णरूपेण नारी जागृति नहीं हो पायी है। प्रसूति समस्याएँ, गर्भ में कन्या होने की स्थिति में गर्भपात, शिशु कन्याओं की हत्या, बीमारियों में बालिकाओं की उपेक्षा, बलात्कार, उत्पीड़न, अनैतिक व्यापार, कम आयु में विवाह आदि समस्याओं के निवारक कानून यथा नारी उत्पीड़न निरोधक बिल (1995), कामकाजी महिलाओं के प्रति अशोभनीय व्यवहार निरोध आदि के द्वारा नारी उत्पीड़न तथा अत्याचारों पर रोक लगाने के प्रयत्न हुए हैं। राजनैतिक दृष्टि से भी महिलाओं को पंचायती राज व्यवस्था में आरक्षण उपलब्ध हुआ है। 21 वीं सदी में भी वधू दहन आज भी निर्भयतापूर्वक होता है, तलाक नारी के लिए कलंक और पुरुष के लिए आजादी है, जहाँ बाल भ्रूणहत्या लेटेस्ट फैशन है। एक ऐसी अमानवीय पतनशील समाज में स्त्री फिर जीवित है, यह क्या किसी आश्चर्य से कम है। अतः नारी शक्ति, शौर्य और सामर्थ्य का दूसरा नाम है। लैंगिक समानता का सिद्धांत भारतीय संविधान के प्रस्तावना मूल अधिकारों, मूल कर्तव्यों और राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों में स्पष्ट रूप से उल्लेखित है। संविधान ने केवल महिला समानता की बात करता है, बल्कि राज्यों को महिलाओं के पक्ष में विभेदकारी नीतियाँ बनाने की शक्ति भी प्रदान करता है। हाल के वर्षों में महिलाओं की स्थिति के निर्धारण में महिला सशक्तिकरण एवं क्षमता निर्माण संबंधी अनेक कार्यक्रम एवं उपाय प्राथमिकता के आधार पर शुरू किये गये।

भारतवर्ष जैसे राष्ट्र में नारी स्वयं में ही सदैव से शक्ति के प्रतीक देवी स्वरूप में प्रतिष्ठित है, आधुनिक समाज में नारी सशक्तिकरण का मुद्दा कोई नवीन शीर्षक नहीं, अपितु यह तो सदैव से ही भारतीय सभ्यता का प्रतीक रहा है। राष्ट्र की परंपरा, संस्कृति, सभ्यता व साहित्य उस राष्ट्र की महिलाओं की स्थिति से ही परिलक्षित होती है। मीडिया में स्त्री की भागीदारी ने स्त्री सशक्तिकरण, बाल विकास, स्वास्थ्य, पोषण, पर्यावरण सुरक्षा आदि मुद्दों पर बहस को नया आयाम दिया है। अगर मीडिया में स्त्री छवि के प्रस्तुतीकरण की बात करें, तो चैनल उन इमेजों को प्रसारित करने में उत्साहित रहते हैं, जो लोकप्रिय होने के साथ महानगरीय भी है। दूरदराज गाँव की स्त्रियों की समस्याओं, कामगार महिलाओं का शोषण, आदिवासी औरतों का दुष्कर जीवन की यदा–कदा ही कोई रिपोर्टिंग,वार्ता, साक्षात्कार, वृतचित्र नजर आते हैं। साथ ही मीडिया स्त्री जीवन के उन वृतान्तों को भी कवरेज नहीं देता, जो समाज की अन्य स्त्रियों के लिए मिसाल हो सकती है।

भूमंडलीकरण व उदारीकरण के दौर में चाहे बैंकिंग हो या वित्त, राजनीति हो, होटल हो या अस्पताल चलाने का मामला, वाहन उत्पादन से लेकर दवा उत्पादन तक या ऊर्जा और पर्यावरण इंजीनियरिंग व जैव प्रौद्योगिकी जैसी विशेषता का क्षेत्र, महिलाएँ आगे बढ़कर कंपनी या संस्थान की कमान सँभाल रही हैं और अभिनव प्रयोगों से अपनी प्रतिभा के झंडे फहरा रही है। अरुंधती, भट्टाचार्य, इंदिरा नूयी, साक्षी मलिक,पी.बी.सिन्धु, दीपा मलिक, दीपा करमाकर, सुषमा स्वराज, ममता बनर्जी, जयललिता, वसुंधरा राजे सिंधिया, किरण बेदी, मैरीकॉम, कल्पना चावला, सुनीता विलियम्स, लारादत्ता, अमृता चांडी, रेखा मेमन, स्मृति ईरानी, श्रीमती इंदिरा गाँधी, एनीबिसेंट, आरती साहा, ऐश्वर्या राय जैसी अनेक महिलाएँ अपने क्षेत्र में शीर्ष पर विद्यमान हैं। सूचना प्रौद्योगिकी, दूरसंचार, इंजीनियरिंग, सेना, राजनीति और रिटेल जैसे पुरुषों के प्रभुत्ववाले क्षेत्रों में उच्च पदों पर भी अब महिलाएँ पहुँच रही हैं। इन क्षेत्रों में लागू तथाकथित बंदिशें लाँघ रही हैं। इन सबके बावजूद आज भी महिलाओं के एक बड़े तबके के लिए उनके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित सभी फैसलों पर पुरुष ही हावी रहते है। परंपरा से हटकर कोई भी कार्य उनके लिए अपमानजनक होता है।

आज के दौर में युवा महिलाएँ अपने कैरियर को एक नए मुकाम पर पहुँचा रही हैं और अपने फैसले स्वयं कर रही हैं। छोटे से लेकर बड़े शहरों तक, संयुक्त परिवारों से लेकर एकांकी परिवारों तक की युवा महिलाएँ जीविकोपार्जन और नए कैरियर के खातिर बढ़–चढ़कर काम कर रही है। बेटी को पिता की चिंता को अग्नि देते देखना या महिलाओं को पुरोहित का काम करते देखना अब असामान्य बात नहीं है। वह एक गहन प्रतीकात्मक बदलाव है।

संस्कारों से प्रभावित नई पीढ़ी जब नारी के दैहिक सौंदर्य को ही देखना चाहती है, तो नारी कृत्रिम सौंदर्य प्रसाधनों का सहारा लेने पर विवश हो जाती है। नारी की नुमाइश और भोग की वस्तु के बतौर चित्रित करने का उपक्रम इतनी आक्रामकता से कभी नहीं चला था। मार्केटिंग विशेषज्ञ चाहते हैं कि स्त्री के उस स्वाग्रह का ही गुणगान किया जाए, तो बाजारू हो या बाजार में तेजी ला सकती हो। अधिकांश पत्रिकाएँ स्त्री के यौन आकर्षक के उभार को दिखानेवाले चित्रों से भरी रहती है। विज्ञापनों में उसी को मोहक–नाजी अंदाज में अंदाज में दिखाया जाता है। आज जो छेड़छाड़,शीलहरण आदि घटनाएँ बढ़ रही हैं। उसके पीछे नारी का आकर्षक दीखने,फैशन परस्ती की ओर भागने की भूल भी बहुत बड़ा कारण है। आधुनिकता के नाम पर नारी और उसका रूप सौंदर्य ही विज्ञापनों की वस्तु बनकर रह गया है, जो सिनेमा के विज्ञापनों से लेकर कैलेण्डर, साबुन, दंतमंजन और बीड़ी माचिसों तक में नारी को ही चित्रित किया जाता है। लाटरी के विज्ञापनों से लेकर शराब की बोतलों तक में उसी की छवि प्रदर्शित की जाती है। बाजार की हर वस्तु की बिक्री का ठेका मानो नारी के सौंदर्य ने ले लिया है अथवा नारी का सौंदर्य इतना हेय है कि उसे सार्वजनिक शौचालयों तक में चिपकाने में किसी को कोई आपत्ति नहीं। आज यौन भोग और प्रदर्शन को नारी मुक्ति का पर्याय बनाने और उन्मुक्तत भोग–उपभोग को आधुनिक नारी की उपलब्धि बतानेवाले, महिला सशक्तिकरण के नाम पर महिलाओं के लिए दूसरी तरह का जाल बुन रहे हैं। विज्ञापनों में नारी की देह का प्रदर्शन तथा फिल्मों में भी नारी नग्नता प्रदर्शन की कोई सीमा नहीं है। जिससे महिलाओं के प्रति शिष्टता का हनन हो रहा है। विज्ञापन सेंसर होने के लिए भारतीय दंडसंहिता की धारा 242, 293 और 294 द्रष्टव्य है। अश्लील तथा भद्दा चित्र प्रकाशित या प्रदर्शित करके किसी महिला का ब्लैकमेल करने को रोकने लिए 23 दिसंबर 1986 को स्त्री अशिष्ट रूपण अधिनियम 1986 बनाया गया। फिल्मों पर रोक लगाने के लिए 1952 में सेंसर बोर्ड का गठन किया गया। धारा 167 के अंतर्गत रिमांड के लिए यदि महिला अभियुक्त को बुलाना आवश्यक हो तो सुरक्षा का प्रबंध करना आवश्यक है। सशक्तिकरण के नाम पर महिलाएँ सत्ता का दुरुपयोग कर पुरुषों की गलतियों को ही दोहराकर अपने लक्ष्य से भटक रही है। भारतीय दंडसंहिता की धारा '498 ए' महिलाओं को क्रूरता से बचाने के लिए जोड़ी गई, लेकिन अब यह बदला लेने का हथियार बन गई है। विज्ञापन अपने ब्राण्ड की प्रतिष्ठा व प्रसिद्धि के लिए ऐसी छवि का निर्माण करता है, जो अधिकाधिक लोगों को आकर्षित कर उपभोग के लिए बाध्य कर सके। स्त्री देह की छवि उत्पाद में आकर्षण के साथ विश्वसनीयता का भी इजाफा कर देती है। स्त्री देह की यह छवि भारतीय स्त्री का प्रतिनिधित्व नहीं करती, अपितु स्त्री सौंदर्य के विश्व मानकों का अनुकरण करती उपभोग को उकसाती है। अतः निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि नारी को आज के इस भौतिकवादी युग में अपने अतीत को वैभवशाली एवं आदर्श छवि को बनाए रखने के लिए कृत्रिम सौंदर्य प्रसाधनों का सहारा लेकर दैहिक सौंदर्य को निखारने की भूल न करके अपने गुणों के अभिवर्धन और व्यवहार को सुंदर बनाने का प्रयास करें, तो निश्चित रूप से अपने व्यक्तित्व को कहीं अधिक प्रभावशाली बना सकती है। अतः उन्हें बाह्य सौंदर्य को निखारने की अपेक्षा अपने आंतरिक स्वाभाविक सौंदर्यरूपी सद्गुणों से ही सजना चाहिए। मन की निर्मलता एवं स्वभाव की पवित्रता से सच्चा शृंगार होता है।

प्रायः सूचना, संचार, तकनीकी का विकास, शिक्षा सार्वभौमीकरण, स्वास्थ्य सेवाएँ, राजनैतिक सबलीकरण के प्रयास के कारण आज महिलाओं की स्थिति में कुछ सुधार होना प्रारंभ हुआ है। महिला सशक्तिकरण की संपूर्ण अवधारणा 'महिलाओं का समुचित अवसर प्रदान करने में है।'' भारत में महिला सशक्तिकरण का प्राथमिक उद्देश्य महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक दशा को सुधारना है। भारतीय समाज में महिलाएँ दीर्घकाल से यातना, शोषण, उत्पीड़न, अवमानना और उपेक्षा की शिकार हो रही हैं। इनकी सामाजिक दुर्दशा को कहीं न कहीं विचारधाराओं, संस्थागत रिवाजों एवं समाज में प्रचलित प्रतिमानों ने बढ़ाया है।

महिलाओं के साथ अभद्र व्यवहार और छेड़छाड़, घरों, सड़कों, बगीचों, कार्यालयों सभी स्थानों पर देखा जा सकता है। बलात्कार, दहेज, उत्पीड़न, हत्या आदि के जो मामले प्रकाश में आते हैं,उनमें से अधिकांश सबूतों के अभाव में छूट जाते हैं। बाल–विवाह की त्रासदी, महिलाओं का अपहरण करके उन्हें वेश्या बना देना, जलाकर मारना और तरह–तरह की शारीरिक एवं मानसिक यातनाएँ देना सामान्य सी बात हो गयी है। महिला साक्षरता अभियान एवं सशक्तिकरण के द्वारा ही उनको मूलभूत अधिकार प्राप्त हो सकते हैं। महिलाओं ने स्वयं अपने शोषण, उत्पीड़न, प्रताड़ना के खिलाफ आवाज उठायी है। समानाधिकार, आर्थिक स्वतंत्रता, धार्मिक संस्तुति, मताधिकार, परदे का विरोध, शिक्षा का अधिकार आदि माँगों को लेकर सक्रिय है, फिर भी आज के वातावरण के कई स्थानों पर देखा गया है कि यह अज्ञानता के गर्त में ही डुबकियाँ लगा रही है। वह सामाजिक प्रताड़नाओं को मूक पशु के समान सहन कर रही है। अगर देखा जाए तो कहीं किसी स्थान पर हम स्त्रियों में कोई कमी अवश्य है, जिसपर चर्चा करके भी हम 'नारी सशक्तिकरण' को और भी प्रबल बनाने में सक्षम होंगे। अफ्रीकी महिलाओं का यह मुक्ति गीत आधुनिक स्त्री की आवाज है–

''मेरी बस एक ही गुजारिश है
तुम मुझे पैसे मत दो
बेशक मुझे उनकी जरूरत है
मुझे अच्छा खाना भी मत दो
मेरी बस एक ही गुजारिश है
कि मेरा रास्ता मत रोको।''

कई शताब्दियों के बाद दलित शोषित एवं विष के घूँट पीनेवाली नारी ने एक जबर्दस्त अँगड़ाई ली है, जिससे उसकी पराधीनता की कड़ियों के कुछ जोड़ चटक–चटककर टूट गये हैं। वह अन्यायी पुरुष की ओर एक क्रोध एवं विदूपता भी दृष्टि फेंकती हुई तीव्र गति के साथ अपने पथ पर गतिशील है।

अस्तु! महिला सशक्तिकरण में स्त्री संगठनों, गोष्ठियों, विचारों के आदान–प्रदान एवं सामाजिक सुधारों के प्रयत्नों के फलस्वरूप कई संवैधानिक मान्यताएँ एवं व्यवस्थाएँ की गयी और समय–समय पर ऐसे अधिनियम पारित किए गए, जिन्होंने स्त्रियों के निर्योग्यताओं को दूर करके उन्हें ऊँचा उठाने का प्रबल भक्ति के रूप में अधिकार दिए गए जो आज हमारी उपलब्धियों और

सशक्तिकरण का साक्षी प्रमाण है। संविधान द्वारा प्रदत्त कुछ प्रमुख अधिकार इस प्रकार है–सतीप्रथा निषेध अधिनियम 1829, हिन्दू विधवा पुनर्विवाह 1856, बाल विवाह निरोधक अधिनियम 1929, अलग रहने एवं भरणपोषण हिन्दू विवाहित स्त्रियों का अधिकार अधिनियम 1946, हिन्दू विवाह अधिनियम 1955, अस्पृश्यता (अपराध नियम) 1955, दहेज निषेध अधिनियम 1991, हिन्दू नाबालिग एवं संरक्षित अधिनियम 1956, हिन्दू दत्तक ग्रहण एवं भरण पोषण अधिनियम 1956, मुस्लिम विवाह विच्छेद अधिनियम 1939 और मुस्लिम शरीयत अधिनियम 1937, प्रसूति सुविधा अधिनियम 1961, बाल विवाह निषेध अधिनियम 1976, समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976, स्त्री अशिष्ट निरूपण अधिनियम 1986, भारतीय तलाक संशोधन अधिनियम 2001, महिलाओं पर घरेलू हिंसा अधिनियम 2001, परित्यक्ताओं के लिए गुजारा भत्ता संशोधन अधिनियम 2001, बालिका अनिवार्य शिक्षा एवं कल्याण अधिनियम 2001 आदि प्रमुख हैं।

प्रत्येक परिवार समाज एवं राष्ट्र की उन्नति का मूलाधार नारी ही रही है। अतः समाज देश और राष्ट्र की महत्वपूर्ण घटक नारी को उच्च शिक्षा देना आवश्यक है। प्रत्येक जाति का उत्थान एवं उद्धार नारी शक्ति से ही संभव है। विवेकानंद ने नारी शिक्षा के विषय में कहा है–''जो जातियाँ नारी का सम्मान करना नहीं चाहती, वह जाति न अतीत में उन्नति कर सकती है और न भविष्य में कर सकेगी। जबतक स्त्रियों की हालत में सुधार नहीं होगा, तबतक संसार में कोई समृद्धि की संभावना नहीं है। पक्षी एक पंख पर कभी नहीं उड़ पाया।

'दुर्गा सप्तशती' में यह वर्णित है कि 'विद्या समस्तास्तव देवि भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकला जगस्तु।' अर्थात् इस समस्त जगत की संपूर्ण विद्याएँ व संपूर्ण नारियाँ उस एक परमात्मशक्ति दुर्गा के ही रूप है। भारतवर्ष की अजेय नारी सावित्री, सीता, अनसूया आदि के रूप में आधुनिक युग की नारियों के हृदय में सदैव पूजनीय रही है। भारतीय संस्कृति में श्रेष्ठ पूजनीय माँ काली को भारत माता का प्रतीक माना गया है। बंकिमचंद्र ने आनंदमठ में उद्‌बोधन किया–''हे माँ! यह आपकी ही छवि है, जिसकी हम मंदिरों में पूजा करते हैं।''

भारत के संदर्भ में स्त्री की छवि को दो रूपों में देखा गया है–पतिव्रता और विलासिता की प्रतीक माया। एक सदाचारिणी, धर्मपरायणा शास्त्रों की अनुगामिनी। दूसरी व्यभिचारिणी, विलासता की उपकरण, सांसारिक बंधनों का प्रतीक।

भारतीय समाज में नारी का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। मनुस्मृति में कहा गया है–'आत्मकल्याण' की अभिलाषा रखनेवाले प्रत्येक पिता, माता, पति और ज्येष्ठ, देवर इत्यादि का यह कर्तव्य हो जाता है कि वे विभिन्नरूपों में नारी का आदर करें। यह भी कहा गया है कि जिस घर में नारी का सम्मान होता है, उस घर के ऊपर देवी–देवताओं की अनुकम्पा बनी रहती है और जिस घर में उसका अपमान किया जाता है, उस घर में कोई भी पुण्य कर्म कभी फलित नहीं होते हैं।

महिला ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट कृति, सृष्टि का उद्‌गम स्रोत एवं जीवनरूपी द्विपाद–चक्रवाहिनी का एक मजबूत पहिया है। ममता एवं करुणा की प्रतिमूर्ति, त्याग और बलिदान की अधिष्ठात्री, प्रेम एवं समर्पण की पर्याय आदि विभिन्न आदर्शवादी स्वरूपों में महिलाओं की भूमिका सदा ही अविस्मरणीय रही है। कालांतर में भारत पर होनेवाले लगातार विदेशी आक्रमणों के परिणामस्वरूप धीरे–धीरे महिलाओं की स्थिति में गिरावट आयी। क्या नारी भयमुक्त होकर अपने सम्मान को खोये बगैर समाज में प्रतिष्ठा और बराबरी का दर्जा पा रही है?क्या हमारे कानून और नियम औरतों को उसका हक दिलवा रहे हैं?ये सारे सवाल ऐसे हैं, जिनका जवाब अभी नहीं मिल सका है।

महिला शिक्षा, शील, ममता, विश्वास, स्नेह और वात्सल्य की शक्ति अर्जित करके समाज को इतना उन्नत कर सकती है कि पुरुष को उनकी बराबरी करने पर गर्व हो। महिला सशक्तिकरण तभी सार्थक है, जब महिलाओं का स्थान समाज की जननी, पालक और पोषक के रूप में सुरक्षित हो। ऐसी स्थिति में दुनिया का कोई भी व्यक्ति या समाज अपने पालक और पोषक का अहित करने की हिम्मत नहीं कर सकता है।

आँकड़ों एवं महिलाओं की भागीदारी एवं उनके विभिन्न सामाजिक आर्थिक पहलुओं पर चर्चा एवं चिंतन करने के पश्चात् यह ज्ञात होता है कि अभी भी वास्तविकता कहीं और है। मात्र कुछ महिलाओं का उदाहरण देकर हम सशक्तिकरण की बात नहीं कर सकते, जबतक कि महिलाओं में साक्षरता पूरी तौर पर न आ जाए। आज देश की आधी जनसंख्या को स्वयं ही जब जागना होगा और स्वयं को इस रूप में तैयार करना होगा कि वे देश के विकास में भागीदार हो। आज महिलाओं को उचित अवसर की आवश्यकता है, इसे प्राप्त होते ही वह अपनी असीम शक्ति को समाज में प्रदर्शित कर सकती है। वैश्वीकरण, बाजार एवं मीडिया ने पूरे विश्व के स्त्री विकास के मानक चिह्नों को लगभग एक कर दिया है। अवसरों की माँग, देह व सौंदर्य के प्रति बोध व विश्वास, लैंगिक पूर्वाग्रह का विरोध, पितृसत्ता को स्त्री विकास में बाधा मानना, स्त्री के विकास के लिए आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक, राजनीतिक समानता की माँग अब प्रमुख मानक चिह्न है।

भारतीय समाज में नारी की स्थिति का इतिहास गत्यात्मक रहा है। प्राचीन भारत से लेकर स्वतंत्र भारत तक नारी की परिस्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन होते रहे हैं। भारतीय संस्कृति में नारी को शक्ति, धन और ज्ञान का प्रतीक माना गया है। वैदिक काल में नारियों की परिस्थिति न केवल अच्छी थी, अपितु अत्यन्त उन्नत भी थी। इस काल की अपाला, घोषा, विश्वतारा एवं माण्डवी आदि को चमकता हुआ नक्षत्र कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। ये नारियाँ साहित्य, व्याकरण, वेद आदि का प्रतीक समझी जाती थी। उपनिषद्‌काल भी नारियों की महिमा से मंडित था। रामायण और महाभारतकाल में नारियों की परिस्थिति में गिरावट आई, फिर भी सीता और द्रौपदी जैसी नारियाँ अधर्म और पाप की समाप्ति का निमित्त बनी, किन्तु इसके पश्चात् मुगल साम्राज्य तक इनकी परिस्थिति में क्रमिक गिरावट देखी गयी, लेकिन ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के दौरान नारियों की परिस्थिति में कुछ सुधार हुआ।

महिलाओं के विरुद्ध हिंसा की समस्या कोई नई समस्या नहीं है। भारतीय समाज में महिलाएँ लंबे समय से अवमानना,यातना और शोषण का शिकार रही है, जिसमें कल के हमारे पास सामाजिक संगठन और पारिवारिक जीवन के लिखित प्रमाण उपलब्ध है। आज शनैः शनैः महिलाओं को पुरुषों के जीवन में महत्वपूर्ण, प्रभावशाली और अर्थपूर्ण सहयोगी माना जाने लगा है, परन्तु कुछ दशक पहले तक उनकी स्थिति दयनीय थी। विचारधाराओं, संस्थागत रिवाजों और समाज में प्रचलित प्रतिमानों ने उनके उत्पीड़न में काफी योगदान दिया है। इनमें से कुछ व्यावहारिक रिवाज आज भी पनप रहे हैं। स्वाधीनता के पश्चात् हमारे समाज में महिलाओं के समर्थन में बनाए गए कानूनों, महिलाओं में शिक्षा के फैलाव और महिलाओं की धीरे–धीरे बढ़ती हुई आर्थिक स्वतंत्रता के बावजूद असंख्य महिलाएँ अब भी हिंसा के शिकार हैं। उनकी हत्या, अपहरण, बलात्कार, पिटाई तथा उन्हें जलाया जाता है। संविधान की दृष्टि से छेड़छाड़, हरण, अपहरण, बलत्कार, हत्या सभी दंडनीय अपराध है। इन अपराधों के लिए भारतीय दंडसंहिता की धारा 363, 366ए, 354, 509, 367, 373, 375, 376 व 377 द्रष्टव्य है। धारा 376, 377 और 354 के अंतर्गत यौन अपराधों के लिए सजा का प्रावधान है।

आज तमाम शिक्षित महिलाएँ अपनी आर्थिक सुरक्षा के लिए घर, गृहस्थी संभालने के साथ–साथ आजीविका के लिए काम भी करती है। आजकल विवाह प्रसंगों में भी वर पक्ष ऐसी ही लड़की पसंद करता है, जो कहीं न कहीं नौकरी करती हो। आर्थिक पक्ष आज प्रबल होता जा रहा है। लड़कियों में पर्याप्त आत्मविश्वास बढ़ने के कारण और उनके अनुरूप नौकरी की सुविधाएँ होने के कारण अधिक से अधिक नौकरी के क्षेत्र में पदार्पण कर रही हैं। जीवन का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है, जहाँ वह पहुँच नहीं रही है । सेना,एयर, होस्टेस, पायलट, पुलिस, विज्ञान, टैक्नोलॉजी, शिक्षा, उद्योग, व्यापार, प्रशासन, एग्जीक्यूटिव, इंजीनियरिंग, मेडिकल, लघु उद्योग धंधे, वस्त्र निर्यात आदि अनेक व्यवसायों में कार्यरत हैं। यहाँ तक कि खेतिहार मजदूर महिलाएँ एवं रोजमर्रा मजदूरी करनेवाली महिलाएँ प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। महिलाएँ

विस्तृत कार्यक्षेत्र में आज अग्रणी हो रही हैं, किन्तु देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं परंपरागत परिस्थितियाँ उनके मार्ग में अवरोध भी खड़ा कर रही है।

जब शिक्षित और अपनी योग्यता में दक्ष कामकाजी महिलाओं के साथ अवांछनीय व्यवहार होता है, तो गरीब और अनपढ़ कामकाजी महिलाओं का क्या हाल होगा। बड़ी–बड़ी इमारतें बनानेवाले ठेकेदार और उनके कर्मचारी, मजदूरी करनेवाली महिलाओं का शील भंग व यौन शोषण करना अपना अधिकार समझते हैं। इसके लिए समाज और सरकार की सभी संस्थाओं को उपाय अवश्य ढूँढ़ने चाहिए। निजी संस्थाओं तथा सरकारी तंत्र में कार्यरत कामकाजी महिलाओं के साथ उनके सहयोगियों तथा अधिकारियों द्वारा जिस प्रकार का अश्लील तथा अशिष्ट व्यवहार किया जाता है, वह निंदनीय है। महिला किसी पुरुष के सहजरूप से सहकर्मी के नाते यदि दो शब्दों का आदान–प्रदान कर लेती है, तो निश्चय ही वह संदेह के घेरे में आ जाती है। इन विपरीत परिस्थितियों के बावजूद महिलाएँ सफलता की सीढ़ियाँ चढ़ती चली जा रही हैं।

अन्ततोगत्वा हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि महिलाओं को सशक्त बनाने की दिशा कागजी रूप से जितना सशक्त सहारा प्रतीत होता है, उतना व्यावहारिक रूप में नहीं है। अतः आज समय की माँग यह है कि कानूनों को व्यावहारिक बनाने के प्रयास के साथ–साथ अपने सामाजिक ढाँचे में भी परिवर्तित करना होगा। वर्तमान में यही कहा जा सकता है कि स्त्री की विभिन्न छवियों में उसे व्यावहारिकता में जोड़ते हुए इमेज के जादू से बाहर निकल वास्तविक संदर्भों को जोड़कर देखना होगा। ताकि देहवादी सौंदर्य से बाहर की स्त्री क्षमताओं के सच को पहचान करके उसके प्रति सम्मान की दृष्टि का विकास हो। महिलाओं को विकास के लिए शिक्षा के समुचित अवसर उपलब्ध कराकर उन्हें अपने अधिकारों और दायित्वों के प्रति सजग करते हुए उन्हें आर्थिक सामाजिक दृष्टि से आत्मनिर्भरता और स्वावलंबन की ओर जागृत करने जैसे अहम उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पिछले कुछ वर्षों से काफी प्रयास किये जा रहे हैं। स्त्री–पुरुष सभी को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय देने का आश्वासन दिया गया है। स्त्री हो या पुरुष समाज हो या राष्ट्र अस्तित्व रक्षा स्वतंत्रता और शांति संभव है। युद्ध हिंसा व सामाजिक न्याय के लिए मूलभूत अधिकारों के बिना क्या अति संभव है। युद्ध हिंसा व सामाजिक विघटन की स्थितियों में प्रबुद्ध महिलाओं द्वारा हर जगह उठाई गई माँगें दिशाहीन एवं आंदोलन में नये मोड़ की सूचक है।

महिला सशक्तिकरण हेतु आवश्यक है कि वह स्वयं उन नीतियों एवं योजनाओं के निर्माण में सहभागी हो, जो उसके लिए बनाई जा रही है। यह तभी संभव है, जबकि वे स्वयं उस राजनीतिक व्यवस्था का अंग हो, जो नीति निर्माण एवं क्रियान्वयन के लिए जिम्मेदार है। राजनीतिक शक्ति संरचना एवं निर्णय प्रक्रिया में भागीदारी से ही महिलाएँ सशक्तिकरण की दिशा में आगे बढ़ सकेगी। आज का युग महिला सशक्तिकरण का है। कभी महिला अबला कही जाती है, परन्तु आज सबला है। आज की महिला अपने अस्तित्व की पहचान कर रही है। अपनी स्वतंत्रता के प्रति सजग हुई है। घर की चारदीवारी में कैद न होकर स्वतंत्र होना चाह रही है। यह सत्य है कि देश में कन्या भ्रूणहत्या का पाप एवं यौन शोषण की घटनाएँ अनवरत प्रगति पर है, किन्तु फिर भी इस संदर्भ में महिलाओं की ओर से अथक सफल प्रयास जारी है। आज की महिला अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष करनेवाली भँवरीदेवी है, त्याग और करुणा की प्रतीम मदर टेरेसा है, अंतरिक्ष की ऊँचाइयों को छूनेवाली कल्पना चावला है तथा सृजनात्मक ऊर्जा से भरपूर अरुंधती राय है। जीवन की प्रतियोगिता और स्पर्द्धा में श्रेष्ठतम स्थान पाने में वे समर्थ रही है। कहा जा सकता है कि नारी उच्चतम नैसर्गिक शक्तियों का स्रोत है, अतः उसे जागृत कर खुशहाल जीवन की और प्रेरित किये जाने की आवश्यकता है।

अतः दुनिया में ऐसा कोई देश नहीं है, जहाँ महिलाओं को हाशिए पर रखकर आर्थिक विकास संभव हुआ है। महिलाओं का विकास की मुख्यधारा से जोड़े बिना किसी समाज, राज्य एवं देश के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। आज अनवरत संघर्ष के बूते देश में महिलाओं ने सत्ता के सर्वोच्च शिखर तक चढ़कर हर क्षेत्र में स्वयं को पुरुषों के समकक्ष साबित किया है। वे नए जोश के साथ रसोईघर की दहलीज लाँघकर सामाजिक दायित्व निभाती दिखाई पड़ रही हैं। अपने स्वप्नों को साकार करने के लिए महिलाओं ने गरीबी और सामाजिक बंधनों को भी तोड़ा है। ये सुधार जाहिर तौर पर महिलाओं में चेतना का प्रतीक है। 21 वीं सदी का भारत नारियों का भारत होगा, ऐसा विश्वास है। विकसित भारत के हर क्षेत्र में नारियों की भागीदारी बढ़ रही है। उनका अपेक्षित विकास पुरुषों की तुलना में काफी आगे है। निष्कर्षतः महिलाओं के सशक्तिकरण से ही परिवार, समाज, राष्ट्र एवं अखिल विश्व का कल्याण है। सरस्वती, लक्ष्मी और दुर्गा का वास्तविक स्वरूप महिलाओं में दृष्टिगोचर हो, ऐसी कामना है। विश्व के विकास में स्त्रियों की भागीदारी यही आज की माँग है,जो उचित है। संगीत, सिनेमा, दूरदर्शन, विज्ञान, खेल,राजनीति, व्यवसाय, उद्योग, कला, पर्यटन आदि समस्त क्षेत्रों में इनकी भागीदारी पुरुषों से कतई कम नहीं है।

स्वामी विवेकानंद ने कहा है–''यदि आप मुझे पाँच सौ पुरुष दे दो तो मैं राष्ट्र को एक वर्ष में बदल दूँगा; परन्तु यदि मुझे पचास महिलाएँ दे दो तो मैं कुछ ही महीनों में देश को बदल दूँगा।

अतः हम यह कह सकते हैं कि निःसंदेह सरकार ने अपने प्रयासों और सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक समस्याओं से जुझते हुए महिलाओं को चौखट की दहलीज से अंतरिक्ष तक न रास्ता बनाया है, बल्कि आज घूँघट उठने पर बेशर्म, बेहया, बेअदब जैसे अपमानित शब्दों से दूर नारी समाज में एक स्थान बनाने में कामयाब हुई है। हालाँकि सदियों से चली आ रही रूढ़ियों और परंपराओं को टूटने में समय लगता है। किन्तु आज की नारी के प्रति सोच में लोगों का नजरिया भी बदला है। अब जरूरत है कि समाज के लिए आदर्श बन चुकी कुछ महिलाओं का सामान्य जीवन का सामाजिक सच बनाए जाए। यही पूरे देश की भारतीय संदर्भों में विकास की परिभाषा होगी।

संदर्भ सूची :

1. श्रीवास्तव ए.एल. मध्यकालीन भारतीय संस्कृति 1979
2. लूनिया, बी.एन. प्राचीन भारतीय संस्कृति, प्रकाशन लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा
3. कस्तवार, रेखाः स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ,राजकमल प्रकाशन दिल्ली
4. पांडेय, विमलचन्द्र : भारतवर्ष का सामाजिक इतिहास, प्रकाशन हिन्दुस्तान एकेडमी 2000
5. सिंघल, लताः भारतीय संस्कृति में नारी
6. राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, 1990
7. पाण्डेय, अजय शंकर : भारत में महिला सशक्तिकरण ऐतिहासिक विवेचन, गायत्री पब्लिकेशन, 2010
8. पाटिल, प्रतिभा देवी संह, सशक्त स्त्री सशक्त देश, योजना अक्टूबर 2008
9. व्होरा, आशा रानी : औरत कल आज और कल, कल्याणी शिक्षा परिषद्,नई दिल्ली 2006
10. कुमार,राकेश : नारीवादी विमर्श, आधार प्रकाशन, पंचकुला, हरियाणा
11. राजकुमार : भारतीय नारी : सामाजिक अध्ययन, अर्जन पब्लिकेशन, नई दिल्ली
12. अल्तेकर,ए.एस. वीमेंस हिन्दू सिविलाइजेशन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1962
13. देसाई, नीराः वूमन इन मार्डन इंडिया, वोरा एंड कंपनी पब्लिशर्स, मुंबई 1957
14. शर्मा, प्रज्ञाः महिला विकास और सशक्तिकरण, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर 2001
15. बेदी, किरण : महिला सशक्तिकरण : कुछ विचार, योजना, अक्टूबर, योजना भवन, नई दिल्ली

आलेख

बच्चन की मधुशाला में रहस्यवाद

भगवती प्रसाद द्विवेदी
सीताशरण लेन, मीठापुर, पटना
मो.–9430600958

यों तो कविता अनेक काव्यान्दोलनों से होकर गुजरती आ रही है, मगर भक्तिकाल के बाद छायावादकाल ही एक ऐसा दौर था, जिसे हिन्दी कविता का स्वर्णयुग कहा जाता है। सन् 1920 से 1936 तक स्वर्णकालिक छायावादी अवधि ने पंत, प्रसाद, निराला और महादेवी जैसे चार गौरव स्तंभ दिये। उसके बाद का काल भी छायावाद से ही जुड़कर उत्तर छायावाद एवं छायावादोत्तर के रूप में रेखांकित किया गया, जिनके प्रमुख कवियों में एक थे डॉ. हरिवंश राय बच्चन। सन् 1907 से 2003 तक बच्चन जी ने छियानबे वर्ष का भरपूर जीवन जिया था और 1929 ई. से आरंभ हुई उनकी काव्य–यात्रा अंतिम साँस तक चलती रही थी। उन्होंने गुणात्मक व परिणामात्मक दृष्टि से विपुल साहित्य रचा था तथा 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' को चरितार्थ करते हुए इतिहास रचनेवाली पारदर्शी, ईमानदार व काव्यात्मक चार खंडों में क्लासिक आत्मकथा (क्या भूलूँ क्या याद करूँ, नीड़ का निर्माण फिर, बसेरे से दूर, 'दसद्वार' से 'सोपान' तक) दी, जिसपर उन्हें प्रतिष्ठित सरस्वती सम्मान प्रदान किया गया था।

बच्चनजी ने छायावाद, रहस्यवाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद जैसे कई काव्यान्दोलनों को देखा, जाँचा–परखा और कमोबेश प्रभावित भी हुए, पर सही मायने में उनकी प्रतिबद्धता मानवतावाद के प्रति थी। आमतौर पर आलोचकों ने छायावाद को रहस्यवाद का पर्याय माना है, किन्तु सच्चे अर्थों में छायावाद में व्यक्ति के सुख–दुःख और प्रकृति की छाया प्रतिबिम्बित हुई है। व्यष्टि की रागात्मिकता पीड़ा समष्टि का हर्ष–विषाद बन गया था और संपूर्ण जनमानस द्रवित हो उठा था। छायावाद के शीर्ष स्तम्भ पंत ने तो कहा भी था–

''वियोगी होगा पहला कवि आह से उपजा होगा गान
निकलकर आँखों से चुपचाप वही होगी कविता अनजान।''

असमय पिता की मौत और अत्यन्त प्रिय सहचरी श्यामा के विद्रोह ने बच्चन को तोड़कर रख दिया था। उनका अंतर्मन हाहाकार कर उठा था–'आज मुझसे दूर दुनिया।' अकेलेपन का दंश झेलते हुए उन्होंने लिखा था–

''संघर्ष से टूटा हुआ, दुर्भाग्य से लूटा हुआ
परिवार से छूटा हुआ, कितना अकेला आज मैं
भटका हुआ संसार में, अकुशल जगत व्यवहार में
असफल सभी व्यापार में, कितना अकेला आज मैं
खोया सभी विश्वास है, भूला सभी उल्लास है
कुछ खोजती हर साँस है, कितना अकेला आज मैं!''

मगर मनस्वी कवि बच्चन ने खुद को अवसाद से उबारा और संघर्षशीलता पर विजय हासिल करते हुए घोषणा की–

''है अंधेरी रात
पर दीया जलाना कब मना है।''

उन्होंने शरीर की नश्वरता और जीवन की क्षणभंगुरता का अहसास किया तथा पीड़ा में भी सोल्लास जीने एवं पीड़ित मानवता को मस्ती का पैगाम देने का दृढ़ निश्चय कर लिया। तभी तो उन्होंने आत्मपरिचय देने के क्रम में कहा था–

''मिट्टी कातन, मस्ती का मन
क्षणभंगुर जीवन मेरा परिचय।''

कवि बच्चन ने 'रुबाइयात उमर खैयाम' के फिटजरेल्ड के पहले अंग्रेजी अनुवाद का 'खैयाम की मधुशाला' शीर्षक से ऐसा सरस, प्रवहमान व प्रभावी पद्यानुवाद किया कि हिन्दी संसार चमत्कृत रह गया। प्रातःकाल का एक मनोरम दृश्य उद्धरणीय है–

उषा ने फेंका रवि पाषाण
निशा भाजन में जल्दी जाग
प्रिय देखो यह संकेत
गये कैसे तारक दल भाग
और देखो तो उठकर प्राण
अहेरी ने पूरब के लाल
फँसा ली मुल्तानी मीनार
बिछा कैसा किरणों का जाल।''

मगर जब 1935 में बच्चनजी की एक सौ पैंतीस रुबाइयों का संग्रह 'मधुशाला' प्रकाश में आया तो पुस्तक ने लोकप्रियता के सारे मानदंड ध्वस्त कर दिये। काव्यमंचों की मार्फत 'मधुशाला' की रुबाइयाँ जन–जन का कंठहार बन चुकी थीं और कवि बच्चन का हालावाद का प्रवर्तक माना जाने लगा था। आम पाठक–श्रोता सोचते थे 'मधुशाला' का कवि मधुपान में गहरे डूबा रहा होगा, जबकि सच्चाई यह थी कि बच्चनजी ने मदिरा को कभी हाथ तक नहीं लगाया था।

'मधुशाला' की लोकप्रियता आज भी यथावत् बरकरार है। सन् 1985 में जब इसके प्रकाशन की स्वर्ण जयन्ती मनाई गई थी तो बच्चनजी ने चार नई रुबाइयाँ और जोड़ी थीं। आज भी पुस्तक मेलों में इसकी जबर्दस्त माँग देखकर तथा अमिताभ बच्चन के स्वर में इसकी प्रस्तुति सुनते श्रोताओं को अभिभूत होते देख सुखद आश्चर्य होता है। तब महाकवि पंत की उक्ति स्मरण हो आती है–'मधुशाला की मादकता अक्षय है।' उन्होंने यह भी कहा था–

''अमृत हृदय में, गरल कंठ में, मधु अधरों में
आए तुम वीणा धर कर में, जन–मन मोहन!''

मधुशाला के चार प्रतीक हैं–हाला, प्याला, मधुबाला और मधुशाला। इन्हीं प्रतीकों के माध्यम से जीवन जगत के रहस्यपूर्ण भावों को सरसता के साथ अभिव्यक्त किया गया है। कहीं क्रांतिकारी विचारों की प्रधानता है, तो कहीं रागात्मक अनुभूतियों की तरलता है। सभी बिन्दु मर्म को छुए बगैर नहीं रहते।

कहा जाता है कि महात्मा गांधी जिन दिनों नशाखोरी के खिलाफ व्यापक अभियान चला रहे थे, उनके कुछ अनुयायियों ने मद्यपान को बढ़ावा देनेवाले 'मधुशाला' के कवि के बारे में बताया था। गांधीजी ने बच्चन को बुलाकर कुछ रुबाइयाँ सुनी थीं और सुनते ही उनकी धारणा बदल गई थी। साम्प्रदायिक कट्टरता व धर्मोन्माद के दौर में बच्चनजी की जिस रुबाई ने उन्हें गहरे प्रभावित किया था, वह थी–

मुसलमान औ हिन्दू हैं दो
एक मगर उनका प्याला
एक मगर उनका मदिरालय
एक मगर उनकी हाला
दोनों रहते एक न जबतक
मस्जिद–मंदिर में जाते
बैर बढ़ाते मस्जिद–मंदिर
मेल कराती मधुशाला।

हर रुबाई में उपमा, उपमान, उपमेय की ऐसी तारम्यता है कि हृदयतंत्री के तार सहज ही झंकृत हो उठते हैं। जब कविता का प्याला थामे कवि साकी की भूमिका में हो और प्याले में कल्पना भावुकता की हाला हो, वैसी

पुस्तकरूपी मधुशाला का भला कौन पाठ का दीवाना न होगा!

''भावुकता अंगूर लता से
खींच कल्पना की हाला
कवि साकी बनकर आया है
भरकर कविता का प्याला
कभी न कणभर खाली होगा
लाख पिएँ दो लाख पिएँ
पाठकगण हैं पीनेवाले
पुस्तक मेरी मधुशाला।''

युवापीढ़ी की मनःस्थिति। एकाग्रता व धैर्य का अभाव। अस्थिरता, ढुलढुल रवैया और भटकाव–दर–भटकाव ऐसे हालात में कवि की अभिप्रेरणा से भरी 'चरैवति' का संदेश देती पंक्तियाँ गौरतलब हैं–

''अलग–अलग पथ बतलाते सब
पर मैं यह बतलाता हूँ
राह पकड़ तू एक चलाचल
पा जाएगा मधुशाला।''

यहाँ पर मधुशाला वांछित मंजिल को इंगित करती है। अंग्रेजी की मशहूर उक्ति है–'लाइफ इज ब्यूटीफूल ओनली फॉर दोज, हू कैन सेलिब्रेट पेन।' बच्चनजी दर्द को हर्षोल्लास में बदलने की कला के मर्मज्ञ हैं, इसीलिए वे कहते हैं–'पीड़ा में रसानंद जिसे हो आए मेरी मधुशाला।'

कालजयी 'मधुशाला' कि रहस्यमयता में जीवन–मरण की अनसुलझी गुत्थियाँ हैं, आध्यात्मिक चेतना जगाती सकारात्मक सोच है, जीवन दर्शन से भरे चिरंतन सत्य की झलक है, जद्दोजहद से जीत हासिल करने का जीवनानुभव है और प्रकृति का मानवीकरण करती नयनाभिराम कुदरती छटा है। कहीं यह मधुशाला साम्यवाद की प्रथम प्रचारक–सी प्रतीत होती है, तो कहीं सौ–सौ समाज सुधारकों की भूमिका निभाती नजर आती है। मधुशाला का विस्तार किसी की आँख से लेकर ऋषि–मुनियों की तपोभूमि और संपूर्ण विश्व तक में हैं

'मधुशाला' के कवि ने अपने 'संबोधन' में कहा था कि मनुष्य की चरम अभिलाषा आत्मानंद में नहीं, आत्मोत्सर्ग व आत्मसमर्पण में है। इसीलिए तुलसी के 'सियाराममय सब जग जानी' की भाँति कवि बच्चन को दुनिया के सारे उपादान 'हाला– प्याला–मधुशाला–मय' आभासित हो रहे हैं–'कवि के हृदय लगने के साथ ही आज समस्त विश्व मादक हाला में परिप्लावित हो उठा है। जल और थल, गगन और पवन, सिन्धु और वसुंधरा, स्वर्ग और नरक, जड़ और चेतन, निशा और दिवस, वन और उपवन, सर और सरिता, मिलन और विरह, प्रणय और संघर्ष, आशा और निराशा, जन्म और जीवन, काल और कर्म–सभी वस्तुएँ, जिनका अस्तित्व इस विश्व में है, आज हाला–प्याला–मधुशाला–मय आभासित हो रही है।'

दरअसल मधुशाला जीवन की एक ऐसी शाला है, जहाँ हालावाद के बहाने जीवन–जगत की गुत्थियों को सुलझाने की नई दृष्टि प्राप्त होती है। निस्संदेह यह चिंतन और चेतना का काव्य है। उनकी 'मधुबाला', 'मधुकलश', 'निशा–निमंत्रण', 'एकांत संगीत', 'आकुल अंतर', 'सतरंगिनी', 'हलाहल', 'मिलन यामिनी', 'प्रणय पत्रिका', 'धार के इधर उधर', 'बहुत दिन बीते', 'जाल समेटा' आदि काव्यकृतियों में भी लोकचेतना, रागात्मकता व अनवरत संघर्षशीलता के शाश्वत स्वर गूँजते रहते हैं। जरूरत है गहरे पैठने की, क्योंकि जिन ढूँढ़ा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ।' 'अग्निपथ' की इन पंक्तियों के साथ मैं उनकी स्मृति को प्रणामांजलि अर्पित करता हूँ–

''अग्निपथ अग्निपथ अग्निपथ
तू न थकेगा कभी, तू न थमेगा कभी
तू न मुड़ेगा कभी!–कर शपथ, कर शपथ, कर शपथ
यह महान दृश्य है, चल रहा मनुष्य है
अश्रु–स्वेद–हस्त से लथपथ, लथपथ लथपथ लथपथ,
अग्निपथ, अग्निपथ, अग्निपथ!''

लोकवाणी

प्रगति गुप्ता
जोधपुर
मो.–9460248348

दयानंद जायसवाल जी के संपादकीय से अपनी बात शुरू करूँगी। जहाँ वह कहते हैं...'जबतक रचनाकार का आंतरिक संघर्ष स्पष्ट मुखर और व्यवस्थित नहीं होगा, तबतक वह बाह्य समस्याओं से लड़ नही सकता।' यह बात किसी भी लेखक के लेखन को गहराई देती है, क्योंकि व्यवस्थित मन में एक अंतदृष्टि जन्म लेती है और वह घटनाओं में प्रविष्ट होकर उसकी सूक्ष्म पड़ताल करती है। तभी अच्छा सृजन होता है। लेखन में जबतक पड़ताल का अंश नहीं होगा, उसमें गहनता नहीं आएगी। साथ ही साहित्य की कोई भी विधा हो, अगर उसके प्रारूप से जुड़े नियमों को जरूरत से ज्यादा तोड़ा जाता है तो साहित्य की उस विधा का रूप कुरूप हो जाता है।

सुसंभाव्य पत्रिका देश–विदेश में नामचीन लेखकों के विभिन्न विधाओं पर विचारों को बहुत विस्तृत रूप में रखती है, ताकि पाठकों को बहुत कुछ सीखने को मिले। इस बार भी काव्य में रस निष्पत्ति के संदर्भ में बहुत विस्तृत लेख हैं। साथ ही पत्रिका में विभिन्न लेखकों के साहित्य में अवदान पर भी विस्तृत चर्चा है, जो कि समाज, साहित्य व लेखक के लिए महत्वपूर्ण है। विभिन्न विधाओं से जुड़ी हुई पुस्तकों की समीक्षा प्रारंभ से ही पत्रिका का ध्येय रहा है, तभी यह सृजन व समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका मानी जाती है। किसी भी विधा में संग्रह हो उसका मूल्यांकन पत्रिका का हिस्सा बना है।

इसके अलावा समकालीन व पुरातन लेखकों की स्तरीय कहानियाँ, गजलें, कविताएँ, लेख व शोध इसमें प्रकाशित होते रहते हैं। बतौर पाठक अपने मन की सामग्री पत्रिका में मिली है। इस बार लघु शोध में 'ओशो के दर्शन में स्त्री पुरुष का प्रेम पक्ष' बहुत सूक्ष्म अध्ययन कर बहुत गहनता संजोए हुए है।

हर बार संपूर्ण पत्रिका पढ़ने के बाद महसूस होता है कि जो भी पढ़ा उसपर मनन कर लिया जाए। पत्रिका की सामग्री मन मस्तिष्क में घूमती रहती है। यह पत्रिका की खासियत है। जब संपूर्ण सामग्री का चयन बहुत अच्छा हो तो बहुत मुश्किल होता है अलग–अलग सभी के सृजन को रेखांकित करना।

अंत में यही कहना चाहूँगी कि पूर्व अंकों की तरह जनवरी अंक भी बेहद सराहनीय है और इस पत्रिका की जानकारी सभी लेखकों व पाठकों तक पहुँचनी चाहिए।

व्यंग्य

उनकी पहली हवाई यात्रा

श्रीमती वीना सिंह
महाराजा अग्रसेन नगर, लखनऊ
मो. 8005419950

एक लेखक के लिए किसी बड़े साहित्यिक कार्यक्रम में सम्मिलित होने की तो खुशी ही कुछ और होती है और यदि जीवन में पहली बार ऐसा मौका मिला हो तो खुद को सँभालना ही मुश्किल हो जाता है। कुछ ऐसी ही खुशी हमारे बड़के भइया को नसीब हुई है। वैसे तो आए दिन वह गोष्ठियों में व्यस्त रहते हैं, पर उच्च स्तर के कार्यक्रम का न्योता पाकर बे बाबरे से हो गये।

बड़के भइया का ऊँचे कार्यक्रम में ऊँचे रास्ते से जाने की खबर से हमारे भी कान तन गये। खबर पक्की जान मुँह मीठा करने के उद्देश्य से हम भागे–भागे पहुँचे, तो बड़के भइया अटैची सँभालते मिले। हमने जाते ही प्रश्न पर प्रश्न ठोक दिये, भइया! कहाँ, क्यों, कब, काहे जा रहे हो?भइया ने गुरूर से अकड़ती हुई आँखों को दाएँ–बाएँ घुमाते हुए मुझे नकारे तुच्छ प्राणी की तरह कई बार ऊपर से नीचे तक निहारा, फिर गरदन थोड़ी टेढ़ी करके बोले– एक महीने बाद एक बड़े से कार्यक्रम में, बड़े लोगों के बीच, बड़े से हवाई जहाज से, बड़ी दूर जाना है। अब जाओ, यहाँ बहुत काम करना है। बड़के भइया का बदला रूप देखकर हम तो आँखें और मुँह फैलाए के फैलाए रह गये। वे फिर झल्लाकर बोले क्या साँप सूँघ गया, जो मुँह बाए खड़े हो या कुछ और पूछना है?हमने हकलाते हुए कहा, हाँ! मैं यह पूछ रहा हूँ कि अभी जाने में एक महीने का समय है, फिर अटैची अभी से क्यूँ...वे मेरी बात काटकर बोले–नासमझ! बड़े कार्यक्रम की तैयारी भी बड़ी होती है, कहीं एक भी सामान भूल भुला गये तो हवाईजहाज से उतरकर लेने तो आ नहीं जाएँगे। न ही तुझे फोन कर सकेंगे कि यहाँ रास्ते में खड़े हैं, फलाँ सामान घर पर छूट गया है, दौड़कर दे जाओ। अब तू क्या जाने, बड़े कार्यक्रमों की तैयारियाँ। अटैची लगाना ही एक काम नहीं है और भी बहुत सी तैयारियाँ करनी है। कार्यक्रम में कौन–से कपड़े पहनने हैं, कौन–सी घड़ी बाँधनी है, चश्मे का फ्रेम पुराने स्टाइल का है उसे बदलवाना है, फोन में पैसे भरवाने हैं, नये जूते भी खरीदने हैं। हम भी चुटकी लेने में पीछे नहीं रहे कि भइया! सब कुछ नया खरीद लीजिए, पर जूते फटे ही पहनिए। वे आँखें तरेरकर बोले क्यों?वह इसलिए कि क्या पता आपके फटे जूते मुंशी प्रेमचन्द के फटे जूतों की तरह चर्चित हो जाएँ। समय का बदलाव किसने देखा, क्या पता आपके दुनिया छोडने के बाद (बुरा मत मानिए, अपने देश में लेखक मरने के बाद ही प्रसिद्धि पाते हैं) आपके जूतों पर वरिष्ठजन रचनाओं के ढेर लगा दें, बड़े–बड़े उपन्यास छपवा दें, लोग बात–बात में आपके फटे जूतों का जिक्र करें। मेरी सलाह ने एक क्षण के लिए तो उनके दिमाग पर प्रभाव डाला। बोले–हाँ, तुम्हारी बात में दम तो है, पर बड़ा कार्यक्रम है। वहाँ बड़े–बड़े लोगों के बीच में हमारी बेइज्जती भी तो हो सकती है! नहीं, यह ठीक नहीं रहेगा, जूते नये ही खरीदेंगे। उन्होंने अपनी खोपड़ी खुजलाई और चिन्ता जताई कि चिन्ता केवल पहनने–ओढ़ने की नहीं हैं, बोलने की भी है। कुछ ऐसा बोलना चाहता हूँ कि वहाँ बैठे सभी भारी भरकम लोगों पर भारी पड़े।

मैंने ठहाका लगाया–अरे, बड़के भइया! काहे को उतराती हुई बात कह रहे हो। बोलना तो आपके बाएँ हाथ का खेल है। आपके सामने तो बड़े–बड़े धुरंधर धूल चाटने लगते हैं, (वे हमें घूरते, इससे पहले मैंने बात संभाल ली) मतलब, बड़े–बड़े बड़बोलों की बोलती बन्द हो जाती है। एक बार माइक के सामने आपका मुँह खुल जाये तो फिर भगवान भी नहीं जानता कि कब बन्द होगा। वे गौरवान्वित हो सिर ऊँचा कर मुस्कराए। मैंने बात बढ़ाई, भइया! हम सुनी सुनाई बात थोड़े ही कह रहे हैं, खुद अपनी आँखों से देखे और कानों से सुने हैं कि जब आप बोलते हैं, तब लोग कैसी फब्तियाँ कसते हैं?उनकी प्रश्न करती आँखों ने मेरी आँखों में झाँका। तब मैंने बताया, यही कि साला कहाँ–कहाँ की फालतू बातें पेल रहा है। जिन बातों का साहित्य से कोई लेना–देना नहीं है, उन्हीं बातों को बारंबार ठेल रहा है। माइक तो ऐसे पकड़ा है, जैसे नेता कुर्सी पकड़ते हैं। भइया ने पलटकर हमें देखा, इस बार उनकी आँखें गुस्से से लाल हो रही थीं। यदि भोले भण्डारी की तरह तीसरा नेत्र होता तो हमें जलाकर राख ही कर देते। हमें भी अपनी बेबकूफी पर थोड़ी शर्मिन्दगी हुई। जल्दी से अपनी बात पलटी कि बड़के भइया! सुना है हवाई जहाज का टिकट तो बड़ा महँगा होता है तो क्या टिकट कार्यक्रम वाले लोग ही भेज रहे हैं?बोले–वे क्यों देंगे टिकट। वे हमें बुला रहे हैं, यही बड़ी बात है, सबको थोड़े ही बुलाते हैं। हम हैं इस काबिल इसलिए। मैंने उनकी बात काटी, तो फिर टिकट के पैसों की व्यवस्था कैसे होगी?क्योंकि हमें पता है कि आपके पास तो भुंजी भांग भी नहीं हैं। इस कॉपी कलम से तो दाल–रोटी ही मुश्किल से चल पाती है। लेखक यदि कलम के पैसों से हवाई यात्रा कर लेता तो भला उसे गरीब की संज्ञा क्यूँ दी जाती और हाँ, बड़के भइया! बुरा मत मानना इस बार हम भी कोई मदद नहीं कर पायेंगे। इस बार भैइया झल्ला उठे, चुप रहो या जाओ यहाँ से। तुम्हें चिन्ता करने की जरूरत नहीं है, मैं कहीं न कहीं से टिकट का इंतजाम कर लूँगा। घर गिरवी रख दूँगा, पत्नी के जेवर बेच दूँगा, टिकट के पैसे इकट्ठा कर ही लूँगा, समझे। बात ज्यादा बिगड़ती देख हम दबे पैर वहाँ से खिसक लिए।

ज्यों–ज्यों कार्यक्रम के दिन नजदीक आ रहे थे, बड़के भइया तो चिंतन में ऐसे दुबले हो रहे थे, जैसे बोर्ड परीक्षा आने पर छात्र दुबले हो जाते हैं। दिन तो किसी तरह कट जाता, पर रात तो जैसे जाड़ों की रात जैसी हो जाती, बीतने का नाम ही नहीं लेती। हर पल दिल और दिमाग उथल–पुथल में रहता कि पता नहीं कैसा होगा वह दूर का शहर, कैसे होंगे वहाँ के लोग, कैसा लगेगा पहली बार हवाई जहाज में बैठकर?हवाई यात्रा का ख्याल आते ही पूरे वदन में सिरकन पैदा हो जाती, मन भीतर ही भीतर सिहर उठता। सोचते–विचारते अगर कभी आँख लग भी जाती तो बस तुरन्त ही बन्द आँखों में हवाई यात्रा शुरू हो जाती। कभी हवाई जहाज के अन्दर बैठे ठाट से अंग्रेजी डिसेज का मजा ले रहे होते, तो कभी शरबत पीनेवाले गले को व्हिस्की के घूट से तर कर रहे होते। कभी सुन्दर सी एयर होस्टेज को देखकर कल्पनाओं में खो जाते, काश! छोटू की माँ ऐसी होती तो कुछ और बात होती। कभी खिड़की से झाँककर नीचे देखते फिर जोर से चिल्लाते, देखो छोटू की अम्मा! हम यहाँ इतने ऊँचे पर हैं, तुम चिन्ता न करना, जैसे उड़कर जा रहे हैं, वैसे ही उड़कर तुम्हारे पास वापस आ जायेंगे।

कई बार पत्नी ने हिलाकर पूछा–अरे छोटू के पापा! काहे गला फाड़ रहे हो, हम तो बगल में ही सोये हैं। रात भर प्लेन–प्लेन करते हो, न चैन से सोते हो न सोने देते हो। हमें तो लगता है कुछ ऊपरी चक्कर है। वे इठलाए, अरे नहीं रे पगली! कोई ऊपर का चक्कर नहीं हैं, यह तो ऊँचाई छूने की खुशी है, जो अनजाने बयाँ हो जाती है। तुम्हें नहीं पता, यह सम्मान मिलने के बाद हमारा नाम भी सम्मानित लोगों की सूची में दाखिल हो जायेगा। हम भी वरिष्ठ कहलायेंगे, फिर देखना अपन का जल्बा। छोटू की माँ धीरे से बुदबुदाई, आग लगे ऐसी हवाई यात्रा को, तन के कपड़े, गहने, चौका की करछुल–बटुली तक बिकवा डाली, तब जाके टिकट खरीद पाये, बड़े बनने चले सम्मानित और वरिष्ठ।

आखिर जाने का दिन आ ही गया। पूरा गाँव बड़के भइया को ऐसे विदाई देने पहुँचा जैसे अन्तिम विदाई हो। कुछ के तो आँसू भी टपक गये। गाँव की बूढ़ी दादी ने गले लगाकर हिदायत दी–देखो बड़के! पहली बार हवाई जहाज मा बैठई जाइ रहे हौउ, ऊपरवाले का नाम जपति रहेउ। हाथ, गोड, खोपड़ी कछु खिरकिया से बाहर न निकारेउ। बड़के भइया दादी के भोलेपन पर मुस्कराये और सबको राम–राम कर चलते बने।

हवाई जहाज की यात्रा के दौरान जिस आनन्द की कल्पना उन्होंने की थी, वैसा कुछ भी नहीं लगा। हवाई जहाज में बैठे तो, पर कब उड़े पता ही नहीं चला और पहुँच गये। ऐसा लगा उठाकर यहाँ से वहाँ धर दिये गये। खैर, कोई बात नहीं, हवाई जहाज उड़ा हो या न उड़ा हो, यह उड़ानेवाले जाने, उन्हें पहुँचना था, सो पहुँच तो गये, पर अब जायें तो जायें कहाँ?हवाई अड्डे पर कोई लेने ही नहीं आया। माज़रा कुछ समझ नहीं आ रहा था, दिमाग चकराने लगा। फिर याद आया कि निमंत्रण कार्ड में पता तो लिखा ही है, खुद ही पूछते–पाछते पहुँच जायेंगे। अटैची का कोना–कोना छान मारा, पर कार्ड नहीं मिला, माथा ठोका, उफ्! लगता है कार्ड घर पर ही भूल आए। जल्दी से कुर्ते की जेब से नोकिया सोलह सौ का छोटा प्यारा–सा मोबाइल निकाला और जल्दी से घर फोन लगाया, कहा–छोटू की माँ! हम बड़ी मुश्किल में हैं, जल्दी से कार्ड से पता देखकर बताओ। पत्नी ने अफसोस के साथ बताया कि कार्ड की तो नाव बनाके छोटू ने कब की पानी में बहा दी। अब फोन पर बड़बड़ाने के अलावा कर भी क्या सकते थे। वे अपनी मूर्खता पर खुद ही लजाए, सोचा भी न था कि दूर शहर आते ही मुसीबत फट पड़ेगी। दो दिन शहर खगारते हो गया, पर कार्यक्रम स्थल ढूँढ़े नहीं मिला, तो नहीं मिला। अब उन्हें सिर पीटने के अलावा कुछ सूझ नहीं रहा था इससे तो अच्छे अपने छोटे शहर के छोटे–छोटे कार्यक्रम ही थे। यहाँ तो सब अन्जाना, सब बेगाना। किधर जाएँ, नहीं दिख रहा कोई ठिकाना?बड़के भइया की ऊँची उड़ान का गुब्बारा पल भर में फुस्स हो गया। अब वे किसी तरह अपने शहर पहुँच जाएँ, बस ऊपरवाले से यही प्रार्थना कर रहे हैं।

लघुकथा

मोबाईल का गुम होना और नींद का खोना

संजय वर्मा 'दृष्टि'
मनावर जिला धार (मप्र)
मो.–9893070756

मोबाईल का सभी के पास होना अनिवार्य हो गया। जीवन की आवश्यकताओं में मोबाईल भी शामिल हो ही गया। पुराने समय में चिट्ठी, पत्री कबूतर और धीरे–धीरे डाक से भेजी जाने के बाद मोबाईल के चलन में आगे आ गया। सुबह–शाम मोबईल हाथों में। शराब की बोतलों पर हानिकारक संदेश लिखा होता है। फिर भी लोग कहाँ मानते। मोबाईल के विकिरण और ज्यादा उपयोग और निर्देशों के बावजूद लोग संग ही रखते हैं वो एक प्रकार से घर का सदस्य बन गया है। जिसके पास महँगा मोबाईल है, वो शख्स दूसरों के सामने उसकी खूबियों का बखान करने से नहीं चुकता। यह भी फैशन का हिस्सा बन गया। ऐसे कई लोग हैं जो मोबाईल तो रखते मगर उसको सही ढंग से चलना नहीं जानते। जो लोग मोबाईल चलाने के गुरु होते हैं। जो लोग कहीं अटक जाते हैं तो अपने उस्ताद के पास ले जाते हैं, उस्ताद जो कुछ जानता है, वो उन्हें बता देता है। उस्ताद भी अटक जाते हैं तो अगल–बगल झाँककर अधिक जानकारी की तलाश में जाते हैं।

मोबाईल में मैसेजे, वीडियो को वे फारवर्ड करने में ऐसी माहिर होते हैं जैसे फिल्म निर्माता फिल्म रिलीज कर रहा हो। सब उसकी तारीफ करते, बहुत बढ़िया मैसेज भेजते रहो। वे तारीफ से फूल के कुप्पे हो जाते। मन ही मन सोचते कि मुझे तो किसी और ने मैसेज भेजा था। ये लोग समझ रहे कि मैंने बनाया होगा। सीना फुलाये घूमते। उनकी मैसेज फारवर्ड करने की ड्यूटी लोगों ने तारीफों के बल पर लगा रखी जो थी। निभाते आ रहे हैं। मैसेज कभी नहीं भेजा तो नाराजगी, व्यवहार में लोगों के परिवर्तन आ जाता।

मोबाईल की चार्जिंग खत्म होती है तो मोबाईल धारक चिंता मोड हो जाता है, उसे लोग चिंतनीय मोड का नाम दे देते हैं। जब चार्जर की जुगाड़ जम जाए तो ऐसा महसूस होता है कि किसी ने गर्मी के दिनों में ठंढा पानी पिलाया हो या तपती धूप में पेड़ की छाया नसीब हो गयी हो।

पहले हाट–बाजारों आदि में जेब ही कटती थी। अब मोबाईल के लिए जेबकतरे भी आगे आए हैं। एक बार भीड़ भरे इलाके में एक महाशय की जेब में रखा मोबाईल जेबकतरों ने चुरा लिया। मोबाईल की रिपोर्ट दर्ज की गई। उसके लिए आवेदन पत्र के साथ मोबाईल पहचान, मोबाईल से संबंधित दस्तावेज को संलग्न करा। मोबाईल सीम ऑफिस जाकर दूसरी सीम उसी नंबर की ली गई। उसमें भी खर्चा लगा। सीमवाले ने बहत्तर घंटे में चालू होने की बात बताई।

दीपावली त्यौहार का ऑफर को सुनकर मन में नया मोबाईल खरीदने की ललक जाग उठी। नये मोबाईल के लिए राशि की जुगाड़ उधार लेकर की। नये मोबाईल की पूजा की। दोस्तों ने मिठाई माँगी। सीम चालू होने के इंतजार में दोस्त, रिश्तेदार, घर के सदस्य सभी परेशान हो गये। मोबाईल चालू हुआ तो लगा जैसे कोई सुबह का भूला शाम को घर आ गया हो।

मोबाईल गुम होने की व्यथा सुनाते–सुनाते खर्चा बढ़ता गया, व्यथा सुनाने के लिए चाय पिलाओ, तब ही कुछ देर सुनने को लोग रह सकते हैं और आश्वासन के साथ फिक्र न करो का मूलमंत्र भी दे जाते हैं। उधर घर में महाशय की पत्नी उनकी लू उतारती रही और चीजों की सँभालकर रखने की हिदायतें भी हर समय देने लगती है। मोबाईल गुम नहीं हुआ होता, तो महाशय कहाँ अपनी पत्नी के इशारों पर नाचनेवाले थे?मोबाईल गुम होने की चिंता से जब महाशय बार–बार अपनी जेब को निहारते रहने लगे, तब नींद में उठकर अपने सिरहाने रखे जानेवाले मोबाईल की याद सताती। फिक्र का विकिरण वाकई ताकतवर होता है।

आखिर मोबाईल चालू होने के बाद त्यौहारों पर शुभकामनाओं के साथ मोबाईल गुम होने की व्यथा भी जोड़ देते हैं। लोग ये समझ नहीं पा रहे हैं कि ये शख्स रो रहा है या हँस रहा है। मोबाईल से सेल्फी ली तो उसके चेहरे पर मुस्कान कोसों दूर। क्या करें, मोबाईल गुम होने का दर्द दिल में दबा था तो मुस्कान आए भी तो कहाँ से।

महाशय को एक उपाय सूझा। उसने प्याऊ पर पानी का गिलास को जंजीर से बँधा देखकर जंजीर में मोबाईल को बाँधने का उपाय सोचा। मगर सामनेवाले के घर पर पालतू कुत्ते के गले में जंजरी बँधी देखकर उसका प्लान फिर फेल हो गया। उनको आखिर में एक बात समझ में आयी–भाई! मोबाईल नहीं गुम होना चाहिए, उससे उत्साह और खुशियाँ नदारद हो जाती है। दिमाग का भिन्नता भोट होना स्वाभाविक प्रक्रिया होकर व्यक्ति की आर्थिक स्थिति डाँवाडोल कर जाती है।

निबंध

आस्था का वृक्ष

डॉ. आशा 'पुष्प'
बोकारो इस्पात नगर, झारखंड

हमारी आर्यभूमि आरंभ से ही ऋषि–मुनियों की तपोभूमि रही है। निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि पर्यावरण–संरक्षण में उनका सहयोग चिरस्मरणीय है। अग्नि के आविष्कार के साथ ही मानव ने प्रगति की ओर ज्यों ही पहला कदम बढ़ाया तथा जंगल जलाकर अपनी झोपड़ियाँ बनाना शुरू की तथा कृषिकार्य की ओर भी उद्धत हुआ, त्यों ही जंगलों में निवास करनेवाले विद्वान महात्माओं ने मानव की अनियंत्रित महत्वाकांक्षाओं की आहट पा ली थी। उन्होंने धर्मकथाओं के माध्यम से जंगल–संरक्षण की ऐसी मधुर और अवधारणा गढ़ी, जो कालान्तर में हमारी संस्कृति और परंपरा बन गई। योगी–संन्यासियों, धर्मगुरुओं और पूर्वजों की ही धार्मिक विरासत हजारों वर्षों बाद भी ज्यों के त्यों हमारे धर्मप्राण मन में रचा बसा है। हमारे तीज–त्योहार उन्हीं विश्वासों का प्रतीक है।

गोल–गोल पत्तों वाला, विराट जटाओं वाला, अपनी बृहत् छाती ताने खड़ा, मुस्कुराकर बाहें फैलाकर अपनी शीतल छाँव में बुलाता यह तपी, अनेक छोटे–बड़े परिन्दों की शरणस्थली है। जी हाँ! यह 'वटवृक्ष' है। एक से अनेक होना इसका स्वभाव है। इस चलनशील वृक्ष की उपासना हमारे लिए गौरव का विषय है। सतयुग में महासती सावित्री और उनके तपी पति 'सत्यवान' हुए। पुराणों में ऐसी कथा है कि सती सावित्री विवाह के अल्पकाल बाद ही विधवा हो गई। ज्येष्ठ माह के कृष्णपक्ष की त्रयोदशी को ज्यों ही यम ने प्राण हरे, सावित्री ने अपने पति के मृतदेह को इसी 'वटवृक्ष' की सुरक्षा में रखकर यम का पीछा किया एवं सौ पुत्रों की माता बनने का वरदान प्राप्त कर लिया। इस प्रकार उन्होंने ये अपनी निष्ठा और चतुराई से अपने पति के प्राण वापस ले लिये। तब से आज तक भारतीय समाज में 'वटसावित्री' पूजन की प्रथा है। इस दिन लड़कियाँ और स्त्रियाँ अपने अखंड सुहाग के लिए सती से प्रार्थना करती हैं एवं वटवृक्ष की पूजा कर सत्यवान के मृतदेह की रक्षा के लिए धन्यवाद देती हैं। इस वृक्ष को किसी भी प्रकार से हानि पहुँचाना धर्मविरुद्ध समझा जाता है।

'निमिया के डार मैया लागलै हिंडोलवा की झूली झूली...' यह लोकगीत संपूर्ण भारतवर्ष में गाया जाता है और भारतीयों की आत्मा में समाया है। ज्येष्ठ मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी के दिन नीम के पेड़ की उपासना होती है। 'दुर्गासप्तशती' में लिखा है कि दुर्गा के विभिन्न रूपों में शीतला माता भी एक रूप है। इस दिन नीम के पत्ते खाये जाते हैं एवं नीम का जल संपूर्ण घर में छिड़का जाता है एवं प्रार्थना की जाती है कि चेचक जैसी महामारी के प्रकोप मानव समुदाय की देवी रक्षा करें।

जगन्नाथपुरी हमारी आस्था का महत्त्वपूर्ण केन्द्र है। इस मंदिर में विराजनेवाले भगवान बलराम, देवी सुभद्रा एवं स्वयं जगन्नाथ की प्रतिमा इसी नीम वृक्ष के तने से गढ़ी जाती है। यों तो इस वृक्ष का हर भाग मानवीय स्वस्थता के लिए औषधि है। भला, ऐसा वृक्ष कहीं और कहाँ?तन–मन और संपूर्ण वातावरण को निर्माल्य प्रदान करने वाला यह वृक्ष जीवनदाता ही तो है।

'पीपल के पत्ते गोल–गोल, कुछ कहते रहते डोलडोल।' अश्वत्थ अमरता का प्रतीक है। ऐसी मान्यता है कि पीपल के पेड़ पर चौरासी लाख हिन्दू–देवी–देवताओं का वास होता है। इस वृक्ष पर शनिदेव का विशिष्ट स्थान है। ऋषियों ने कहा है–अमावस्या के दिन जो स्त्री इस पेड़ के चारो ओर कच्चा धागा लपेटेगी, वह अखंड सौभाग्यशालिनी होगी। पुराणों में लिखा है कि प्रत्येक शनिवार को जो कोई तिल, गुड़, तेल और दीप से शनिदेव की अर्चना करता है, उसे शनिदेव शारीरिक, मानसिक और आर्थिक कष्टों से बचा लेते हैं। यह अश्वत्थ सदा से हमारी सभ्यता और संस्कृति की वाटिका रही है। पांडवों के अज्ञातवास के समय अस्त्र शस्त्रों का रक्षक बनकर तो कभी बुद्ध और जैन का निर्वाणस्थल बनकर। मानव–मन को ऊर्जा और जीवन को गतिशील बनाने में इसका अतुलनीय योगदान है।

हमारे देश में कुछ लोग लड़की के विवाह से पहले आम और महुआ का विवाह कर बेटी के लिए सुख–सौभाग्य की कामना करते हैं। दोनों वृक्षों का ब्याह सामाजिक समरसता की ओर इशारा करते हैं। ये पेड़ सामान्य जनजीवन में अत्यन्त सुलभ है।

अशोक का यह वृक्ष भी हमसे बहुत कुछ कहता है। इसने जनकनंदिनी के पावन स्पर्श को महशूसा है। रावण की यातना से त्रस्त सीता के आँसुओं और दुखी जीवन का गवाह है। इसने हनुमान के लघुरूप में जानकी के समक्ष अवतरण देखा है। राम के प्रति एक पत्नी के अनन्य प्रेम और विश्वास का यह अकेला सबूत है। वैदेही को निराशा के अथाह सागर में डूबने से बचाकर अपने अभिभावकत्व का दायित्व निवाहा है। इससे 'राक्षसी त्रिजटा' की राम भक्ति और सीता के प्रति ममत्व की पवित्रधारा भी बहते देखा है। अपनी मीठी बयार के माध्यम से जानकी को धैर्य और सत्कर्म के संदेश दिये हैं। भला, ऐसा वृक्ष माँ की गोद क्यों न लगे?'

हमारी संस्कृति में जितने भी पेड़–पौधे हैं, लगभग सभी हमारी धार्मिक आस्था के केन्द्र हैं। शिवपुराण में लिखा है कि एक सौ एक बेलपत्र चढ़ाकर प्रत्येक दिन मनुष्य यम के फंदे से मुक्त हो सकता है। बेल के वृक्ष पर हिन्दू समाज की अगाध श्रद्धा है। इस वृक्ष को किसी भी प्रकार से हानि पहुँचाना पाप समझा जाता है। एवं हानि पहुँचानेवाला व्यक्ति भगवान शिव के कोप का भाजन होता है। इसी प्रकार आक का फूल, भांग, धतूरा भगवान शिव को अत्यन्त प्रिय है, ऐसा संत–महात्माओं ने हजारों वर्षों से हमारे पूर्वजों को समझाया है। आज भी हम उस कथन को स्वीकारते आ रहे हैं। हम इक्कीसवीं सदी में जी रहे हैं। ज्ञान–विज्ञान की बारीकियों से परत दर परत परिचित होते जा रहे हैं। विज्ञान की कसौटी पर परखकर हमने जान लिया है कि ये पेड़–पौधे हमें ऑक्सीजन देते हैं, ये पंक्षियों की शरणस्थली है, जो पर्यावरण संरक्षण के लिए आवश्यक है। भांग, धतूरा, आक जैसे अनेक पौधे आयुर्वेदिक औषधि बनाने के काम आते हैं। फिर भी हमारी धार्मिक आस्था तनिक नहीं डोलती। संस्कृति और परंपरा के साथ–साथ हमारे धार्मिक विश्वास की जड़ें इतनी मजबूती के अतल तक पहुँची है कि पर्यावरण संरक्षण का काम अपने आप होने लगता है।

तनिक हम 'तुलसी के बिरवे' पर भी नजर डालें। यह हिन्दू आंगन की पहचान है। प्राचीन ग्रंथों में लिखा है कि 'सती तुलसी का विवाह किसी शापित गंधर्व राक्षस से हुआ था। तुलसी की तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान विष्णु ने उसे मोक्ष प्रदान किया और तुलसी को अमरपद। यह त्योहार 'देवोत्थान एकादशी' के नाम से धूमधाम से मनाया जाता है। कार्तिक माहात्म्य में लिखा है कि पूरे कार्तिक मास की संध्या में तुलसी के नीचे दीपक जलाकर अपनी मनोकामना सिद्ध की जा सकती है तथा विष्णु की अनुकंपा पाकर उनके परमधाम भी जाया जा सकता है। वस्तुतः आयुर्वेद के अनुसार तुलसी व्याधिमोचनी है। यह बात सीधे तरीके से यदि समझाया जाता तो उस काल के जनमानस में भक्ति और आस्था की जड़ें इतनी गहरी न हो पातीं। युग बदले, वैचारिक धरातल बदले, परन्तु नहीं बदली तो हमारी चिर आस्था।

अपनी आस्था के तराजू पर कुछ फूलों का मूल्यांकन होना चाहिए। क्योंकि वे भी हमारी भावनाओं के मान बिन्दु हैं। मनुष्य जब विकास के पथ पर

बढ़ने लगा होगा, उसे फूलों की उपादेयता का भान भी न होगा। इसीलिए हमारे ऋषि–मुनियों ने कुछ मानदंड निश्चित किये–अड़हूल के फूल से भगवती दुर्गा प्रसन्न होती है। सफेद फूल से शिव का शृंगार होता है।

कमल के पुष्प से भगवान श्रीराम ने रावण पर विजय हासिल करने के लिए दुर्गा माता को प्रसन्न किया था। माता लक्ष्मी की उपासना लाल और श्वेत गुलाब से होती है। गणपति को पीले फूल भाते हैं। माता सरस्वती शुभ्र पुष्पों से प्रसन्न होती है। इस प्रकार विभिन्न फूलों के छोटे–बड़े पौधों ने भी जनजीवन में स्थान बना लिया। सभ्यता के आरंभ में देववाणी महत्वपूर्ण रही, जिसे सामान्य जन का समझना मुश्किल ही नहीं, असंभव भी था। हमारे धर्मप्राण देश में धार्मिक भावनाओं के माध्यम से ही कुछ भी करवाना या समझाना सरल रहा होगा। इसलिए फूलों के संरक्षण के संबंध में भी उन्होंने धार्मिक वृति का सहारा लिया। इन पुष्पों के संरक्षण से कीट–पतंगों का जीवन तो बचाया ही जा सका, साथ ही मधु, तेल, इत्र आदि तैयार कर हमारे पूर्वजों में व्यापार की भी नींव डाल दी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पेड़–पौधे हमारे जनजीवन के अत्यन्त करीब हैं। पश्चिमी सभ्यता की नकल करते–करते हमने धर्म–अधर्म के विचार भुला दिया। धार्मिक डोर से पेड़–पौधों को बाँधना आज की युवापीढ़ी के लिए ढकोसला है। बिना विचार किये जंगल काटते जा रहे हैं। प्रकृति को अपनी धार्मिक आस्था से परे धकेलने की सजा पूरा विश्व भुगत रहा है। ग्लोबल वार्मिंग से लेकर ताल–तलैया, नदी का सूखना और सिकुड़ना मनुष्य की अधर्म का प्रतीक है।

हम भारतीय भी कम नहीं हैं। हमने तो प्रकृति के साथ ऐसा खेल किया है कि हमें दंड देने के अतिरिक्त और कोई रास्ता ही नहीं बचा है। ये प्राकृतिक आपदाएँ–अनावृष्टि, असमयवृष्टि प्रकृति का उल्टा चक्र चलने जैसा दंड जीवन के विनाश का आरंभ–सा प्रतीत होता है। हम जागें और जगाएँ–अपने पूर्वजों के धार्मिक, सत्पथ की ओर बढ़े। अपनी संस्कृति और पुरानी परंपराके माध्यम से अपने पर्यावरण को बचाएँ, अपने को बचाएँ। आस्था का वृक्ष लगाएँ।

बालकथा

२ अक्टूबर पर बापू की सीख

नीरज त्यागी
गाजियाबाद (उप्र.)
मो.9582488698

राजू एक नवीं कक्षा का छात्र है और अपने घर के पास ही एक सरकारी स्कूल में पढ़ता है। राजू बचपन से ही पढ़ने में बहुत होशियार विद्यार्थी है। लेकिन उसके दिमाग की सारी अच्छाइयाँ उसके गणित के अध्यापक के सामने खत्म हो जाती हैं। वह लगातार अपने गणित के अध्यापक के हाथों डाँट खाता रहता है और कक्षा से बाहर कर दिया जाता रहता है। राजू इस बात से बहुत दुखी था। क्योंकि अपनी तरफ से तो वह सभी सवालों का सही जवाब देता, लेकिन न जाने क्यों गुरुजी लगातार उसे डाँटते रहते हैं और कक्षा से बाहर निकालते रहते हैं।

गाजियाबाद के सरकारी स्कूल में पढ़ रहे राजू बड़ी ही मेहनत से अपनी पढ़ाई कर रहा था। क्योंकि उसे पता था कि वह अपने गरीब माँ–बाप का भविष्य पढ़कर ही सुधार सकता है। 2 अक्टूबर आनेवाली थी। क्योंकि हमारे प्यारे बापू (महात्मा गाँधी) जी का जन्म जिस दिन हुआ था, आज रात राजू कुछ अधिक परेशान था। रात को परेशान होते–होते राजू ने महात्मा गाँधी जी की तस्वीर, जो कि उसके घर की दीवार पर टंगी हुई थी, उसने बापू से हाथ जोड़े और प्रार्थना की–'बापू! मुझे गणित के अध्यापक की डाँट खाने से बचा लो। उसके बाद वो सो गया।'

राजू को अभी नींद नहीं आयी थी कि उसने देखा, अचानक तस्वीर से निकलकर बापू, राजू के सामने खड़े हो गये। उन्होंने राजू की समस्या को बड़े ही ध्यान से सुना और राजू से पूछा कि आखिर क्या वजह है, वह अध्यापक उसी को इतना डाँटते हैं। राजू ने बताया कि वह सारे सवालों का सही जवाब देता है, किन्तु उसके गणित के अध्यापक सबके सामने उसका मजाक उड़ाकर कक्षा से निकाल देते हैं और सभी छात्र उसका मजाक उड़ाते हैं।

सब बातों को सुनकर गाँधीजी ने उसे एक उपाय बताया। राजू! तुम रोज अपने अध्यापक के पास जाओ और उन्हें हाथ जोड़कर नमस्ते करके, बिना डाँट खाये, अपनी कॉपी उन्हें देकर खुद ही मुस्कुराते हुए कक्षा से बाहर खड़े हो जाओ और उन्हें ये जरूर बता देना कि आप तो मुझे कुछ देर बाद निकाल ही देते। देखना इस बात से उनके ऊपर बहुत असर पड़ेगा और वह तुम्हें कक्षा के अंदर लेकर तरीके से पढ़ाने लगेंगे और तुम्हारी समस्या का समाधान हो जाएगा।

राजू को उनका उपाय बहुत अच्छा लगा। अगले ही दिन वह कक्षा में पहुँचा और जैसे ही गणित के अध्यापक आए। उसने उनसे हाथ जोड़कर नमस्ते किया और कहा–सर! थोड़ी देर में तो आप मुझे डाँटकर कक्षा से निकालनेवाले हैं। मैं खुद ही कक्षा से बाहर जाकर खड़ा हो जाता हूँ और वह कक्षा से बाहर जाकर खड़ा हो गया। यह घटना क्रम लगातार पाँच दिन चलता रहा, लेकिन गणित अध्यापक पर कोई भी असर नहीं पड़ा, बल्कि वह हँसते हुए उसके सामने से रोज निकल जाते हें। राजू बहुत ही परेशान था।

कल 2 अक्टूबर है। उसने एक बार फिर बापू से पूछा–बापू! अध्यापक के ऊपर तो कोई भी असर नहीं हो रहा है। मैं क्या करूँ?तब बापू ने कहा, 'बेटा! कल तुम मेरी फोटो को लेकर जाना और यह घटना दोबारा से दोहराना। उन्हें गणित की कॉपी के साथ मेरी तस्वीर भी जरूर दे देना। अगले दिन राजू ने फिर उसी घटना को दोहरा दिया। इस बार गणित के अध्यापक को हाथ जोड़कर नमस्ते कर, उसने बापू की तस्वीर भी उनको दे दी और कक्षा से बाहर आकर खड़ा हो गया।

लेकिन आज गणित की कक्षा समाप्त होने के बाद गणित के अध्यापक ने राजू को निराश नहीं होने दिया। उन्होंने राजू को बताया। उन्होंने राजू को दो 500रुपये के नोट दिखाये, जिसपर महात्मा गाँधीजी का फोटो छपा हुआ था। उन्होंने राजू को बताया–'बेटा! कक्षा के लगभग सभी विद्यार्थी मुझसे ट्यूशन लेते हैं, जिससे कि वह पास होकर अगली कक्षा में पहुँच जाएँगे। एक तुम ही हो, जो मुझसे ट्यूशन नहीं पढ़ते। बेटा मेरी बात समझने की कोशिश करना, बापू की बात जो आज भी सारी सही है। लेकिन जो तस्वीर तुम्हारे हाथ में है, वही तस्वीर मेरे हाथ में इस नोट पर है। उस तस्वीरवाले रुपयों से मुझसे ट्यूशन लो और देखना तुम्हें मैं कभी कक्षा से नहीं निकालूँगा।

राजू खुशी–खुशी अपने घर पहुँचा। शाम को फिर बापू की तस्वीर के सामने हाथ जोड़कर बापू से बोला–आखिर, आपकी तस्वीर ने मुझे आज बचा ही लिया। अब मैं समझ गया कि मुझे आगे क्या करना है। बापू ने कहा–'देखा, मैंने तो कहा ही था, सब कुछ ठीक हो जाएगा। फिर महात्मा गाँधीजी ने भी अचंभित होकर सारी घटना को सुना।'

बापू ने सारी घटना सुनकर यही निष्कर्ष निकाला कि शायद आज उनकी बातों को और उन्हें लोगों ने इसीलिए नहीं भुलाया, क्योंकि उनकी तस्वीर एक ऐसे कागज पर मौजूद है। जिसकी जरूरत जीवन की दिनचर्या चलाने के लिए बार–बार पड़ती है। वरना लोग शायद उन्हें कब का भूल जाते। बापू निराश होकर भारी मन के साथ वापस तस्वीर में चले गये।

कहानी

लम्हों ने खता की थी

मनोरंजन सहाय सक्सेना
इन्द्रपुरी लालकोठी,
जयपुर, राजस्थान
मो–9431093077

अन्तर्राष्ट्रीय कंपनी के जनरल मैनेजर मिस्टर रॉय लंच ब्रेक में घर आये तो बेहद परेशान लग रहे सात साल की बच्ची के लिए कंपनी द्वारा दी जानेवाली एज्यूकेशन ग्रांट के फार्म में बच्ची के पिता का नाम नहीं लिखा और पूछने पर बेहद बिफर कर बोली–'इफ क्योटिंग ऑफ फादर्स नेम इज मेण्डेट्री, प्लीज गिव बैक माई एप्लीकेशन, आई डू नाट रिक्वायर एनी ग्रांट और मर्सी।

जब उसने यह कह दिया तो उसकी एप्लीकेशन रिजेक्ट करने में इतना परेशान होने की क्या बात है। पत्नी ने उन्हें सान्त्वना देते हुए सुझाया तो ''ये आजकल ऑफिस में काम करनेवाली महिलाओं के मसले इतने आसानी से नहीं सुलझे जाते। इनके तुरंत समाधानों में ही आनेवाली समस्याओं के सूत्र गुथे होते हैं।'' कहकर मिस्टर रॉय बेहद अनमनेपन से सिर्फ ज्यूस पीकर बिना खाना खाये ही चले गये तो मिसेज रॉय नार्मल होकर समय बिताने के लिए महिला क्लब जाने के लिए घर से निकली ही थी कि सामने तेजी से दौड़कर आती एक बच्ची उनसे टकरा गयी। बच्ची ने टकराते ही उनकी साड़ी को कसकर पकड़ लिया और सुबकते हुए बोली–'सॉरी आंटी! बट प्लीज मुझे आया से बचा लीजिए। आया मुझे बाथरूम में बंद करके अंदर काक्रोच छोड़ने को कह रही है। आंटी! मुझे काक्रोच से बड़ा डर लगता है, सो आंटी प्लीज...

अबतक बच्ची का पीछा करती हुई आया भी आ गयी थी। मिसेज रॉय ने उससे बच्ची के इस तरह डरी हुई होने के कारण पूछा तो उनकी पोजीशन से परिचित आया ने नर्मी से बताया कि–''लड़की स्कूल में किसी बच्चे के लंच बॉक्स में से आलू का परांठा आम के अचार के साथ खा गई है और घर पर भी वही खाने की जिद कर रही है, जबकि उसकी मम्मी ने इसे लंच में पिज्जा पीस... नूडल्स और बटर स्लाइस देने को ही बोला है। बच्ची ने खाना उठाकर फेंक दिया है, सो उसने उसे डराने के लिए बाथरूम में बंद करने को कह दिया था।'' कहकर ज्यों ही आया बच्ची की तरफ बढ़ी, बच्ची ने उनकी साड़ी को और भी कसकर पकड़ लिया और उनकी टाँगों में अपना मुँह छिपाकर सुबकती हुई बोली–'आंटी! प्लीज, मैं आया के साथ नहीं जाऊँगी।''

बच्ची की करुण पुकार से द्रवित मिसेज रॉय को वापिस भेज दिया और बच्ची को अपने साथ लेकर आ गई। बच्ची ने कुछ ही कदमों में उनके साथ में कुछ ऐसा अपनापन अंकुरित कर लिया कि घर आते ही जब उन्होंने उससे खाने के लिए पूछा तो उसने वही आलू का पराठा आम के अचार से खाने को माँग लिया।

प्रौढ़ मातृत्व से आह्लादित मिसेज रॉय ने बच्ची को आलू के परांठे बनाकर आम के अचार से खिलाये तो क्षुधा तृप्ति के आनंद से तरंगित बच्ची बोली–''आंटी! आपने आया से बचाया और इतने टेस्टी पराठे बनाकर खिलाये, सो थैंक्स...मगर शाम को मम्मी डाँटेगी तो आप बचाएँगी क्या?कहते हुए बच्ची के भोले मुँह पर एक भय का छाया उभर आई तो मिसेज रॉय का मन करुणा से भर गया। वह बोली–'जरूर बचाऊँगी, मगर तुम्हें मेरी एक बात माननी पड़ेगी, बोली–मानोगी?'

'हाँ मानूँगी।' बच्ची ने अभय दान पाने की आशा में बिना बात पूछे ही हामी भर दी तो मिसेज रॉय और भी ममतार्द्र हो गई। उसके सिर पर हाथ रखकर बोली–''तुम्हें मुझे आंटी कहना छोड़कर दादी बोलना होगा, बोली–दादी कहोगी मुझे?'' मिसेज रॉय की बात सुनकर बच्ची ने उन्हें एक बार विस्मय से देखा, फिर बोली–''दादी आप जैसी स्मार्ट होती है क्या?उसके तो सारे बाल सफेद होते हैं और मुँह पर बहुत सारी लाइन्स होती हैं, वह तो हाथ में लाठी लेकर चलती है।''

''हाँ, दादी वैसी भी होती है और मेरी जैसी भी होती है। तो तुम मुझे दादी बोलोगी न?'' कहकर मिसेज रॉय ने बेहद ममताभरी निगाह से उसे देखा तो शायद बच्ची को उनमें अपना रक्षकस्वरूप दिखाई पड़ा और वह दादी कहकर उनसे लिपट गई।

शाम को बच्ची की माँ, कंपनी की पी.आर.ओ. रिया जब घर लौटी तो वह फोन पर पिऊ के संबंध में आया की रिपोर्ट पाकर पहले से ही बेहद उद्विग्न थी, मगर एक तो वह सुबह ही अपने बॉस मि.राय से बेहद कड़वा व्यवहार कर चुकी थी, दूसरे वह खुद मिसेज रॉय के उस अहसान से दबी हुई थी कि कंपनी के महिला क्लब में प्रवेश के लिए उसके परिचय के समय अन्य सुशिक्षित और सम्भ्रान्त महिलाओं ने ही जब उसके पति के संबंध में पूछा था और उसके किसी स्पष्ट जबाव नहीं दे पाने से बेहद शंकापूर्ण जिज्ञासाएँ प्रकट की थीं, तो वह क्लब को ज्वाइन करने का विचार त्यागने ही वाली थी, तभी मिसेज रॉय ने यह कहकर कि क्लब की मेम्बर रिया बन रही है, उसका पति नहीं। वह कंपनी की पी.आर.ओ है, यह परिचय काफी है, बात खत्म कर दी थी। इसके बाद भी जब कभी ऐसी जिज्ञासा एक दो बार फिर उठाई गई तो उन्होंने बड़ी संयमपूर्ण कुशलता से उसे निरस्त कर दिया था। इसी का परिणाम था कि फिर ऑफिसर्स कॉलोनी की महिलाओं को उसके पति के बारे में पूछताछ करने का साहस नहीं हुआ। सो वह पिऊ को सीधे घर चलने को नहीं कह सकी। वह उसकी शैतानियों के कारण उन्हें हुई परेशानियों को लेकर क्षमा याचना करते हुए पिऊ को डाँटने लगी, तो मिसेज रॉय ने बड़े ही संयत लहजे में कहा–'रिया! बच्ची तुम्हारी डाँट के डर से पहले से ही डरी हुई है, अब डाँटकर उसे और तकलीफ मत पहुँचाओ। मैं ही आया से छुड़ाकर अपने साथ लायी थी और मैंने ही उसे परांठा बनाकर खिलाया था। इसलिए तुम्हें जो कहना है, मुझे कह सकती हो। मगर आज पता नहीं, कितने दिन बाद मुझे पिऊ के साथ इतना समय बिताकर इतना आनंद मिला है कि मैं बता नहीं सकती, मगर तुम समझ नहीं सकोगी।

मैं समझी नहीं, कहकर रिया ने उनकी ओर देखा तो उनकी आँखों में तरलता देखकर बोली–''मेरी किसी बात से आपको बुरा लगा हो तो मैं माफी चाहती हूँ मिसेज रॉय। मगर पिऊ कितनी शैतान है और आपको इसने कितना तंग किया होगा, मैं जानती हूँ और आपको दोपहर में आराम भी नहीं करने दिया होगा....।''

यह तुम्हारा ख्याल हो सकता है, रिया की बात काटते हुए मिसेज रॉय बोली–''रिया! तुम सीधी ऑफिस से आ रही हो, बाथरूम जाकर हाथ–मुँह धो आओ, मिस्टर रॉय भी आनेवाले होंगे, हमारे साथ चाय पीकर चली जाना।''

जी! चाय, यहाँ सर के साथ चाय...रिया संकोच के साथ बोली, तो मिसेज रॉय बोली–सर होंगे तुम्हारे ऑफिस में, तुम्हारे बॉस, यह घर मेरा है और यहाँ मेरा डिसीप्लिन चलता है। रिया! तुम्हारी उम्र की हमारी बेटी है, जो यू.एस.ए. में सेटल्ड है, उससे दो साल का छोटा एक लड़का भी है, वह भी अपने परिवार के साथ यू.एस.ए. में ही सेटल्ड है। पिऊ की उम्र के हमारे नाती पोते हैं, मगर यहाँ हम दोनों अकेले हैं। मिस्टर रॉय तो ऑफिस चले जाते हैं, मगर मैं कहाँ जाऊँ?कहते हुए उनकी आवाज नम होने लगी, तो थोड़ा संयत होकर बोली–तुम हाथ–मुँह धो आओ, मैं चाय बनाने किचन में जाती हूँ, कहकर वह उठने लगी तो रिया ने उनके हाथ थाम लिये और बोली–''मैं आपकी बात तब मानूँगी, जब आप कह देंगी कि आपने मुझे माफ कर दिया है।''

तुमने ऐसा क्या किया है, जिसके लिए तुम माफी माँग रही हो?फिर थोड़ा रुककर बोली–अच्छा माफ कर दिया, मगर शर्त बस यही है कि अबसे

पिऊ स्कूल से लौटकर लंच अपनी दादी यानी मेरे साथ करेगी और शाम को तुम्हारे लौट आने तक मेरे ही पास रहेगी। मैं इसका होमवर्क वगैरह करा दिया करूँगी। इस तरह मुझे अकेलेपन से मुक्ति मिली रहेगी। अकेलेपन की बात को मिसेज रॉय ने कुछ इस गंभीर तरलता से कहा कि रिया का सिर झुक गया। फिर वह धीरे से बोली–''आपको पता है, यहाँ आया का इंतजाम कितनी मुश्किल से हुआ है।'' तो मिसेज रॉय बोली–''मैं तुम्हें आया को हटाने के लिए नहीं कह रही हूँ, वह तुम्हारे और काम करती रहेगी। अब तुम जल्दी से हाथ–मुँह धोकर आ जाओ, मुझे मिस्टर रॉय के लिए चाय के साथ नाश्ता भी बनाना है। कहकर वह किचन की तरफ बढ़ गयी तो रिया को भी हाथ–मुँह धोने जाना पड़ा।

चाय पीते हुए मिस्टर रॉय ने कहा–''आज बड़ी खुश नजर आ रही हो, क्या बात है?'' मिसेज रॉय बोली–''आज मुझे वह मिल गया है, जिसकी मुझे तलाश थी, मगर तुम नहीं समझोगे।''

''यार! मैं तो तुम्हारी बातों को शायद ही कभी समझ पाया हूँ, मगर रिया के सामने तो मेरी बेइज्जती मत करो।'' तो मिसेज रॉय बोली–'यह तुम्हारा ऑफिस नहीं है।'

ठीक है, कहकर मिस्टर रॉय क्लब जाने के लिए तैयार होने लगे, मगर मिसेज रॉय को रिया के साथ बहुत खुश होकर बातें करते देखकर वह समझ गये कि वह उनके साथ नहीं जा रही। पत्नी को इस तरह खुश देखकर मिस्टर रॉय बहुत संतुष्ट थे।

इस बात को तीन महीने बीत गये। पिऊ और मिसेज रॉय में तो सगी दादी–पोती से अधिक घनिष्ठता हो गई थी, तभी उस दिन पिऊ के स्कूल लौटने के पहले ही ऑफिस की दो महिलाएँ रिया को सहारा देकर मिसेज रॉय के पास लेकर आई। रिया बेहद बदहवास और घबराई हुई थी। वह मिसेज रॉय को सामने देखकर उनसे एकदम लिपटकर काँपते स्वर में बोली– ''बताइये मिसेज रॉय मैं क्या करूँ, पिऊ को कहाँ ढूँढूँ, आप ही कुछ करें, आप पिऊ को बचा लीजिए ...नहीं तो मैं मर जाऊँगी...

पिऊ के बारे में रिया का प्रलाप सुनकर तो मिसेज रॉय भी सकते में आ गई। मगर उन्होंने थोड़ा सँभलकर रिया को सहानुभूति देकर सँभाला और पूरी बात बताने को कहा, तो रिया बड़ी मुश्किल से बता पाई कि उसे स्कूल से खबर दी गई है कि इंटरवल में पता नहीं कैसे पिऊ सिक्यूरिटी की आँख बचाकर स्कूल से कहीं चली गई है। वह अपनी स्कूल डायरी में लिख गई है–''मम्मी! मुझे मेरे पापा के बारे में कुछ नहीं बताती। पूछती हूँ तो टाल जाती है, ज्यादा पूछती हूँ तो डाँट देती है। कल तो मम्मी ने पापा के बारे में पूछने पर मुझे चाँटा मार दिया था, फिर देर रात तक मुझे अपने से चिपटा कर रोती रही, मगर कुछ बताया नहीं। मैं अपने पापा को ढूँढ़ने जा रही हूँ। आपलोग मम्मी को नहीं बताएँ, प्लीज! पापा का पता लगते ही मैं वापिस आ जाऊँगी।'' कहकर रिया विकल स्वर में सुबकते हुए बोली–''अब मैं क्या करूँ, आप बताइए मिसेज रॉय प्लीज! आप किसी भी तरह पिऊ को वापस करवाइये...

रिया का विलाप सुनकर मिसेज रॉय थोड़ी देर उसे सहानुभूति देकर शान्त करती रही, फिर बोली–'तुमने क्या पिऊ को चाँटा मारा था?'

''हाँ, तो क्या करती, एक ही प्रश्न बार–बार पूछती है, जिसका जवाब मैं नहीं दे पाती उसे, कैसे....''

रिया की बात पूरी नहीं हो पाई थी कि मिस्टर रॉय ने एक पुलिस इंस्पेक्टर के साथ प्रवेश किया। इंस्पेक्टर ने बताया कि स्कूल से जिस कद–काठी की लड़की की गुमशुदगी की रिपोर्ट की गई है, वैसी ही लड़की बदहवासी में सड़क पार करते हुए एक कार से टकराकर घायल हो गयी है। उसे अस्पताल में भर्ती कराके स्कूल को इन्फॉर्म कर दिया है। उसकी शिनाख्त के लिए वह रिया को साथ ले जाना चाहते हैं।''

इंस्पेक्टर की बात सुनकर रिया मूर्च्छित हो गयी तो मिसेज रॉय दो अन्य महिलाओं के साथ मूर्च्छित रिया को लेकर अस्पताल रवाना हो गई।

अस्पताल में भर्ती घायल बच्ची की पहचान रिया की पुत्री पिऊ के रूप में होते ही रिया की हालत एकदम बिगड़ गई। पिऊ की हालत संतोषजनक नहीं थी, वह डिलीरियम जैसी स्थिति में थी और बार–बार बड़बड़ाती थी–मुझे पाप को ढूँढने जाना है....मम्मी ने मुझे चाँटा क्यों मारा...मेरे सब दोस्त मेरे पापा के बारे में पूछते हैं...मैं क्या बताऊँ...

पिऊ को सँभाल रहे डॉक्टर मिसेज रॉय को उसकी दादी मानते हुए कहा–''देखिये, बच्ची शरीर से अधिक मानसिक रूप ये आहत है। उसे शांत रखने के लिए अभी नींद की दवा दे दी है, मगर उसकी उम्र और हालत देखते हुए उसे यह दवा अधिक नहीं दे सकते। आपके परिवार में समस्या कुछ भी हो, मगर होश में आने पर अगर बच्ची को उसके पापा के बारे में कोई संतोषजनक जानकारी नहीं दी गई तो बच्ची का नर्वस ब्रेकडाउन हो सकता है। हमने अस्पताल के चाइल्ड साइक्रेटिस्ट को बुला लिया है, आप उनसे संपर्क कर लें।''

चाइल्ड साइक्रेटिस्ट से मिलकर मिसेज रॉय ने उसे उनके और पिऊ के रिश्ते के बारे में स्पष्ट बता दया, मगर उसने भी पूर्व चिकित्सक की बात को दोहराते हुए यह और जोड़ा कि बच्ची के पापा के बारे में तो आप ही जो कुछ बताएँगी, उसी के आधार पर वह लड़की से बात कर पायेंगे।

रिया की हालत देखकर उसे उसी अस्पताल में भर्ती कर लिया गया था। डॉक्टरों के प्रयास से कुछ देर में रिया को होश आ गया तो मिसेज रॉय ने उसे डॉक्टर द्वारा बताई बात बताते हुए पिऊ के पापा के बारे में कुछ बताने के लिए कहा, तो रिया बेहद गंभीर होकर शून्य में ताकने लगी।

रिया को यो ही शून्य में ताकते काफी देर हो गयी तो मिसेज रॉय को लगा कि वह अंदर ही अंदर अपने आपसे जूझ रही है तो उन्होंने बड़ी सहानुभूति से उसके सिर पर हाथ रखा तो वह एक डरी हुई बच्ची की तरह उनसे लिपटकर बोली–मेरे पास अगर इतना सीधा–सरल कुछ बताने के लिए होता तो पिऊ को ही बता देती ना। आप किसी तरह पिऊ को बचा लीजिए मिसेज रॉय...नहीं तो मैं मर जाऊँगी...उसके बिना अब नहीं रह पाऊँगी मैं....

मिसेज रॉय स्थिति की गंभीरता और रिया का अन्तर्द्वन्द्वसमझ रही थी, इसलिए उन्होंने रिया का सिर गोद में रखकर बड़ी आत्मीयता से कहा–''देखो, रिया! तुम मुझे कुछ बताओगी, तभी मैं डॉक्टर को कुछ बता पाऊँगी और वह पिऊ की हालत देखकर उसे कुछ बताकर उसे स्वस्थ कर पायेंगे।'' कहते हुए वह लगातार रिया के सिर पर हाथ फेरते रही तो रिया उनसे अंतर्मन से जुड़ गई।

थोड़ी देर में रिया क्षीण स्वर में बोली–मैं कैसे बताऊँ मगर पिऊ की खातिर बताना ही पड़ेगा। देखिये, आप पिऊ की दादी बन गयी हो तो डर लग रहा है कि आप सारी बात सुनकर मुझसे नफरत करने लगेंगी। मैं अब आपकी नफरत सह नहीं पाऊँगी, कहकर उसने बड़ी कातर नजरों से मिसेज रॉय की ओर देखा तो मिसेज रॉय उसके सिर पर हाथ फेरते हुए बोली–''तुम मुझे पिऊ की दादी ही मान रही हो, मगर रिया! मैं खुद एक माँ भी हूँ, तुम्हारी उम्र की लड़की है मेरी और सबसे बढ़कर मैं एक औरत हूँ, इसलिए कड़वी से कड़वी बात को पचा लेने की शक्ति है। अब अगर तुम मेरा विश्वास कर सकती हो तो सब कुछ बता दो।''

मिसेज रॉय का आश्वासन पाकर रिया ने कहना शुरू किया–''आम मध्यम वर्गीय परिवारों की तरह मैं भी उस परिवार में पली–बढ़ी थी, जो परंपरागत विचारों को हाथ पकड़े आधुनिकता की ओर बढ़ते हैं। इस तरह न तो पूरी तरह परंपरावादी रह पाते हैं, न आधुनिक बन पाते हैं। परंपराओं और आधुनिकता के सही–गलत के द्वंद्वमें अक्सर फँसे रहते हैं और इस कारण पूरी दृढ़ता से शायद ही कोई निर्णय लेकर खुश हो पाते हैं।

प्राइमरी के बाद से ही शिक्षा मेरिट स्कालरशिप से हुई थी, इसलिए बी.कॉम. के बाद एम.बी.ए में मेरा एडमिशन बेंगलोर के एक प्रतिष्ठान संस्थान में हो गया तो घर से दूर तक बड़े शहर में अकेले रहने के निर्णय में माँ–बाप का विरोध ज्यादा देर नहीं रह पाया।

एम.बी.ए. के अंतिम साल में मेरा परिचय संजय से हुआ। वह था तो मध्यमवर्गीय परिवार से ही, मगर स्कालरशिप के साथ उसने कोई पार्ट टाइम जॉब कर लिया था, सो रहता बड़े शान से था। परिचय के बाद हमारी मुलाकातें बढ़ने लगी और हम एक दूसरे को मुहब्बत करने लगे, मगर आज लगता है उस आकर्षण को मुहब्बत कहना ही गलत था, वह तो सिर्फ दो भिन्न लिंगी व्यक्तियों का एक दूसरे को अच्छा लगना मात्र था।

यूँ ही मुहब्बत करते कुछ महीने बीत गये तो एक दिन संजय मुझे बोला–''रिया! बी आर यंग एंड एडल्ट पर्सन्स गोइंग टू कंपलीट एक प्रेस्टीजियस प्रोफेशनल कोर्स टू इनेबल अस टू एचीव सम हाई गोल इन लाइफ। इतने समय से हम इसीलिए रोज मिलते–जुलते हैं, साथ–साथ घूमते–फिरते हैं कि हम एक दूसरे को पसंद करते हैं और मुहब्बत करते हैं। इस मिलने–जुलने के लिए क्लासेज के बाद टाइम और जगह वगैरह की सोचना और फिर यह सब करने में वक्त बर्बाद करना कैरियर के लिए रिश्क है, मगर हम इसके बिना रह भी नहीं पायेंगे, है न?

मुझे संजय की बात एकदम ठीक लगी थी, सो उत्सुकता से पूछ बैठी–'तो क्या करें?' सुनकर संजय बोला–''ऐसा करते हैं अपने हॉस्टल छोड़कर एक अलग मकान किराये पर लेकर एक साथ रहने लगते हैं हमलोग। देखो, तीन महीने बाद प्रोजेक्ट तैयार करने के लिए भी दोनों को ही किसी पार्टनर की जरूरत होगी, तो हम अभी से ही ऑल टाइम पार्टनर बन जाते हैं न!''

संजय की बात सुनकर मेरे ऊपर एक पल को परंपरागत सोच हावी हुई थी, सो मैंने तीव्रता से कहा–''पागल हो गये हो, लोग क्या कहेंगे, हम अपना परिचय क्या कहकर देंगे?''

मेरी बात सुनकर संजय व्यंग्य से मुस्कुराया और बोला– ''तुम मिडिल क्लास आर्थोडोक्स फेमिलीज से आई लड़कियाँ की यही मजबूरी है कि तुम कितना भी पढ़–लिख लो, लोग क्या कहेंगे–सोचना नहीं छोड़ सकती हो। अरे! लोग तो कुछ न कुछ कहेंगे ही, क्योंकि लोगों का काम है कहना। अरे! लोगों के कहने की नहीं, अपनी परवाह करो, अपने बारे में सोचो। देखो, रिया! मेरे लिए तो कैरियर इज द ऑनली प्रायोरिटी और समय की बेहद कीमत है मेरे लिए, सो तो मैं पहली तारीख से हॉस्टल छोड़ दूँगा, तुम अच्छी तरह सोच लो।''

संजय की बात सुनकर मैं सोच में पड़ गई। मुझे खामोश देखकर संजय बोला–''मेरी बात बुरा मान गई हो शायद। मगर रिया यह बंगलोर है'–मेट्रोपोलिटिन सिटी, यहाँ सैकड़ों लड़के– लड़कियाँ इसी तरह 'लिव इन रिलेशनशिप' में रहकर मस्त टेंशन फ्री जिंदगी जीते हैं। यहाँ किसी के पास इतना समय नहीं है कि एक साथ रहनेवाले मॉडर्न युवक–युवती में लड़की की माँग में सिन्दूर और मंगलसूत्र चेक करता रहे। थोड़ा मॉडर्न और बोल्ड बनो।''

यह बात सुनकर मैं एक बार तो बौखला गई, सो चिढ़कर बोली–यह लिव इन रिलेशनशिप यानी बिना माँ–बाप को बताये, बिना विवाह के कपल की तरह रहना...क्या चीज है यह... है क्या यह आखिर। मैंने आक्रोशित स्वर में बोला था।

संजय मेरी बात सुनकर एक बार उत्तेजित हुआ। मगर शायद उसे लगा कि उसकी उत्तेजना मात्रा से बात नहीं बनेगी तो समझाने पर उतर आया। बोला–'मैं फिर से वही बातें कहना नहीं चाहता, मगर तुम खुद देखो, माँ–बाप अपनी लाडली बिटिया के लिए एक अच्छा युवक देखकर उसकी शिक्षा, नौकरी, आमदनी, घर परिवार सब कुछ जाँच–परखकर अपने तमाम परिचित और रिश्ते दारों को जोड़कर लाखों रुपये खर्च करके जो विवाह सम्पन्न कराते हैं क्या!

वह सभी युवक–युवतियाँ सुखी दाम्पत्य जीवन जीते हैं। शादी के कुछ समय बाद पारिवारिक तनावों के कारण एक दूसरे पर शक करके इल्जाम लगाते हुए, अपने ऑफिस में अफसर की डाँट खाकर घर लौटकर उस खीझ में बच्चों को पीटते हुए, ऑफिस में अपने कुलीग के प्रमोशन पर जलकर कुढ़ते हुए एक बेहद तनाव भरी जिंदगी एक दूसरे से विवाह बंधन में बंधे रहने की मजबूरी की वजह से जीते हैं। लिव इन रिलेशनशिप में कोई बंधन या मजबूरी नहीं होती। दोनों प्राणी पार्टनर यानी साथी होते हैं। वह एक दूसरे की इच्छा का सम्मान करते हैं और हर काम एक दूसरे की पूरी सहमति से होता है। इसके बाद भी अगर आप कभी आपस में सहज जीवन बिताने में कठिनाई महसूस करते हो तो खुशी–खुशी एक दूसरे को गुडबॉय कहकर हमेशा के लिए अलग हो सकते हो। इसमें न माँ–बाप के लाखों रुपये खर्च कराने की जरूरत है, न सात जन्मों के बंधन में बंधने की प्रतिज्ञा की। देखो, दिस इज ए रिवोल्यूश्नरी चेंज इन आर्थोडोक्स सिस्टम ऑफ मेरिज इन अवर सोसायटी। हम तुम जैसे हाइली ऐजुकेटेड मॉडर्न यंग चेप्स ही इसे एडप्ट करेंगे, तभी इसे बाइडली एक्सेपटेन्स मिलेगी। सो लेट अस बि पायोनियर ऑफ दिस सोसल रिवोल्यूशनरी चेज।''

मैं संजय के वक्तव्य से प्रभावित होती जा रही थी, मगर अपनी पारिवारिक पृष्ठभूमि के कारण दृढ़ निर्णय नहीं ले पा रही थी, इसलिए बात को फिलहाल टालने के लिए बोली–''संजय! अपने हर समय एक छत के नीचे एक साथ रहेंगे तो...तो इस तरह अगर कुछ गड़बड़ हो गई, मेरा मतलब है कि अगर...कहकर मैंने नारी सुलभ शर्म से बात अधूरी छोड़ दी।

मेरी बात सुनकर संजय ने एक बार मुझे फिर व्यंग्य की नजर से देखा, मगर सहज स्वर में बोला–'रिया! मैं कह चुका हूँ कि लिव इन रिलेशनशिप में हर काम एक दूसरे की सहमति से होता है, तो तुम्हारी सहमति के बिना वैसा कुछ नहीं होगा, वैसे कोई संबंध तुम्हारी सहमति के बिना नहीं बनेंगे। हाँ, आम मिडिल क्लास लड़की की तरह तुम भी मातृत्व में नारीत्व की पूर्णता मानकर उसे प्रायोरिटी दो, तो दूसरी बात है, मेरे लिए तो कैरियर ही एकमात्र प्रायोरिटी है लाइफ में।

संजय ने एक बार मुझे मिडिल क्लास आर्थोडोक्स लड़की कहकर मुझे जो चुनौती दी तो मैंने उसकी चुनौती स्वीकार करने के लिए हॉस्टल छोड़कर उसके साथ रहने का फैसला कर लिया। मगर उस समय यह नहीं सोचा कि उस किसी एक लम्हे की खता की ऐसी सजा भोगनी पड़ेगी।

फ्लेट में रहते काफी दिन बीत गये थे। पहले कुछ दिन तो हम बेहद संयम से रहे, मगर आग और फूस साथ रहने पर कबतक सुरक्षित रहते! उस सदी की रात की बारिश में देर तक बिजली गुल हो जाने के कारण लंबे घुप्प अंधेरे में हमारे बीच का संयम टूट गया और हमने पति–पत्नी के संबंध बना लिये। ईमानदारी की बात यह है कि संजय ने कोई जबर्दस्ती नहीं की, मगर जिस तरह वह मेरे जिस्म को सहलाने और चूमने लगा था, तो मैं उसे इन्कार नहीं कर सकी। इसमें क्या संजय की सहमति नहीं थी और क्या यही है दूसरे साथी यानी मेरी इच्छा का सम्मान सोचते हुए मैं खिन्न हो उठी, तो संजय बोला–'डोंट गो इमनोशनल बि प्रैक्टीकल और उठकर चला गया।

इसके बाद संजय ज्यादा से ज्यादा घर से बाहर या मुझसे दूर ही रहने लगा। दो सप्ताह बीत गये तो एक दिन संजय आया और रुपयों की एक गड्डी मेरे हाथ में रखकर बोला–''तुम्हें तो प्रोजेक्ट रिपोर्ट सबमिट करने की चिंता ही नहीं, तुम्हें तो पहले माँ बनना है, मगर मुझे चिंता है। प्रोजेक्ट वर्क पूरा करने के सिलसिले में पूना जा रहा हूँ, दो हफ्ते लग जायेंगे, ये बीस हजार रुपये रख लो और जल्दी ही एम.टी.पी. करा लो, कैम्पस सिलेक्शन के लिए इंटरव्यू के लिए आठ–दस दिन बचे हैं।

संजय को गये हुए तीन सप्ताह बीत गये। मैं बीच–बीच में उससे संपर्क करने की कोशिश करती, मगर ज्यादातर तो संपर्क होता ही नहीं था। अगर कभी हो जाता था तो संजय–बिजी हूँ, बाद में कॉल करता हूँ, कहकर काट देता था। फिर अंतिम बार संदेश मिला–''दिस नंबर डज नॉट एग्जिस्ट' तो मुझे लिव इन पार्टनरशिप की शर्त समझ में आई कि संजय बड़ी शालीनता से मुझे गुडबाय कर गया है।

मैंने घबराकर सबसे पहले एक महिला संगठन से संपर्क किया, मगर उनका परामर्श था कि वह मल्टी नेशनल कंपनी के रिप्रेजेंटेटिव द्वारा आयोजित कैम्पस सिलेक्शन के लिए इंटरव्यू के लिए तो कॉलेज आवेगा ही, उस दिन उसका घेराव करके उसे इस घटना की जिम्मेदारी स्वीकार करने का दबाव बनायेंगे, अगर वह नहीं मानेगा तो कंपनी के रिप्रेजेंटेटिव्स सब कुछ बता देने की बात कहेंगे तो वह डरकर मान ही जावेगा, नहीं तो उसके खिलाफ तुम्हें बहला–फुसलाकर बलात्कार करने का केस बनवा देंगे तो उसे झक मारकर तुम्हें स्वीकार करना होगा। मगर इसमें जो भी खर्चा होगा, मुझे उठाना होगा। उनका सुझाव सुनकर मुझे लगा कि यह प्रस्ताव मुझे मेरे ही पैसे खर्च करके अपनी बेबकूफी का ढिंढोरा पीटकर उसे सार्वजनिक करना ही होगा तो मैंने उसे विनम्रतापूर्वक इन्कार किया तो संगठन की अध्यक्ष एक बार तो बुरी तरह बौखलाकर मेरे ऊपर बरस ही पड़ी और मैं चुपचाप उठकर आ गयी उनके पास से।

इसके बाद मैं एक महिला वकील से मिली। सौभाग्य से वह वकील एक व्यावसायिक व्यक्ति से अधिक एक स्त्री पहले थी। मेरी बात सुनकर वह बोली–'देखो, अगर समय और पैसा बर्बाद करके कानून से तुम इस संतान को संजय का नाम उसके बाप के रूप में दिलवाने में सफल भी हो गई तो कानून उस रिश्ते को अपनत्व और सामाजिक स्वीकृति तो नहीं दिला सकेगा और अगर बात–बात में कानून का सहारा पाने के लिए अदालतों में चक्कर लगाती रहोगी तो जिंदगी जीने का अवसर कब मिलेगा तुम्हें। अब जिस रिश्ते की दीवार बनकर किसी नींव के रेत में खड़ी हो उसे कोई सहारा कैसे और कब तक बचाएगा?

महिला वकील ने मेरा आत्मविश्वास बढ़ाया–''तुमने संजय की जिस चुनौती को स्वीकार किया था, उसे पूरा करके दिखाने का समय आ गया है। तुम्हारा एकेडमिक रिकार्ड काफी अच्छा है। अभी दो तीन साल तुम्हें कड़ा संघर्ष करना पड़ेगा। उसके बाद सब ठीक हो जाएगा, बस तुम इस बच्चे को कभी अपनी गलती मत मानना।''

मगर जब यह बच्चा अपने बाप का नाम पूछेगा तो...मैंने प्रश्न किया तो महिला वकील बोली–यह भावुक प्रश्न उस समय भी अपनी जगह था, जब सदियों से स्थापित समाज और परिवार की रीढ़ स्तंभ विवाह संस्था की अवहेलना करके तुमने यह संबंध बनाया था, अब इस प्रश्न का उत्तर समय पर ही छोड़ दो। कुछ प्रश्नों के उत्तर समय ही खोजता है।

महिला वकील की सलाह मानना ही निरापद उपाय था, क्योंकि प्रेग्नेंसी बारह सप्ताह की हो चुकी थी। इस तरह पिऊ इस दुनिया में आई। मगर अब उसके पूछने पर उसके बाप का क्या नाम बताऊँ–इसका उत्तर समय नहीं दे रहा है, कहकर रिया निराश नजरों से मिसेज रॉय की ओर देखा। तो वह बोली–'संजय का कोई पता...मगर वह अपनी बात पूरी करती इसके पहले ही रिया बेहद उत्तेजित होकर बोली–''मुझे उससे कोई सहायता या समझौता नहीं चाहिए, प्लीज!''

''मैंने तुम्हें ऐसा करने को तो नहीं कहा। मगर मुझे पिऊ के पिता के बारे में डॉक्टर को कुछ बताने के लिए, उसके बारे में कुछ सोचने के लिए यह जानकारी चाहिए।''–मिसेज रॉय ने समझाते हुए कहा। तो रिया बोली–''किसी कॉमन फ्रेंड ने बताया था कि वह प्रोजेक्ट रिपोर्ट पूरी करने के बहाने पुणे किसी इंटर नेशनल कंपनी के इंटरव्यू में गया था और उसमें सिलेक्शन के बाद तीन सप्ताह की स्थानीय ट्रेनिंग के बाद यू.एस.ए. चला गया, तबसे वहीं हैं और अब तो वह वहाँ का ग्रीन कार्ड हासिल करने की कोशिश कर रहा है। बस, इतना ही पता है रिया ने पीछा छुड़ाने के भाव से कहा और फिर खामोश हो गई।''

रिया की बात सुनकर मिसेज रॉय थोड़ी देर तक बड़ी गंभीरता से सोचती रही, फिर बोली–हाँ, तो मिल गया न पिऊ के पापा के बारे में बताने की समस्या का हल। देखो नाम तो कुछ देना ही होगा। हम डॉक्टर को बता देते हैं कि पिऊ के पापा एक बेटर कैरियर की अपोरच्यूनिटी मिल जाने के कारण उसके जन्म से दो–तीन माह पहले ही यू.एस.ए. चले गये थे। उनके जाने के करीब दो साल बाद ही वहाँ हुए एक विध्वंसकारी आतंकवादी कार्यवाही के बाद उनका कोई पता नहीं है कि वह उस दुर्घटना में भीषण रूप से घायल किसी पहचान के साक्ष्य के अभाव में किसी अस्पताल में अनाम रोगी की तरह इलाज के तहत है या इस वीभत्स रूप से मारे गये कि पहचान लायक कुछ बचा ही नहीं। बाकी काम साइक्रेटिस्ट का होगा कि वह पिऊ को इसमे से कितना क्या और कैसे बताकर उसकी जिज्ञासा शांत करेंगे। ठीक है।''

''मगर यह तो झूठ ही होगा न, पिऊ को जब सच पता चलेगा तो... कहकर रिया ने मिसेज रॉय की ओर प्रश्नवाचक नजर से देखा तो वह बोली–''रिया आगे की बात वक्त पर ही छोड़ दो। अभी इस वक्त की सबसे बड़ी जरूरत पिऊ को नर्वस ब्रेकडाउन से बचाने की है। बाकी तुम जैसा ठीक समझो।'' कहकर अबकी बार उन्होंने कड़ी नजर से रिया को देखा तो रिया अंदर से हिल गई। मिसेज रॉय के दोनों हाथ अपने काँपते हाथों से थामकर उनपर अपना सिर टिकाकर बोली–''अगर में ही समझ पाती तो यह सब कुछ होता ही क्यों?आप जैसा ठीक समझें, करें। मगर पिऊ को बचा लें, प्लीज....''

थोड़ी देर रिया ऐसे ही स्थिर रही फिर काँपते स्वर में बोली–''आप पिऊ की दादी हैं या नानी या दोनों, मैं नहीं कह सकती, मगर कुछ मूर्खतापूर्ण भावुक लम्हों की सजा पिऊ को नहीं मिले, इसके लिए मुझे आपकी ममता, आपके साहस और दृढ़ विश्वास के सहारे की हर कदम पर जरूरत पड़ेगी। आप वादा करिये, पिऊ की खतिर आप मुझे सहारा देंगी। मुझे अकेला नहीं छोड़ेंगी।'' कहते हुए रिया की आवाज रुँध गई तो मिसेज रॉय बोली–''ठीक है, मगर दो शर्तें माननी पड़ेंगी तुम्हें, मानोगी?''

''मैं हर शर्त मानने का तैयार हूँ।'' रिया रुँधे स्वर में ही बोली तो मिसेज रॉय ने शर्त बताई। एक तो मुझे मिसेज रॉय कहना छोड़कर सीधे मम्मी कहना होगा और दूसरी यह कि आज पिऊ के पापा के बारे में तय की गई कहानी ही अब उसके बारे में अधिकृत जानकारी होगी। ठीक है।

''ठीक है मम्मी!'' कहकर रिया ने फिर उनके दोनों हाथ पकड़ लिये तो माहोल को थोड़ा हल्का करने के लिए मिसेज रॉय थोड़ा मुस्कुराकर बोली–''मगर अभी मेरा हाथ छोड़ो, तो मैं जाकर पिऊ को संभालूँ और डॉक्टर को सारी बात बता सकूँ।'' कहकर उन्होंने रिया का माथा चूमा और डॉक्टर से मिलने चल दी।

मिसेज रॉय चली गयी, मगर रिया अभी भी आँखें बंद किये निढाल पड़ी अंतर्मन से मौन प्रार्थना कर रही थी कि उसकी जैसी किसी माँ के मूर्खतापूर्ण भावुक लम्हे की खता की सजा किसी पिऊ जैसी कोमल बच्ची को नहीं भोगनी पड़े।

कहानी

मैं तेरा शहर छोड़ जाऊँगा

डॉ. पूरन सिंह
राजस्थान
मो.–9828763953

मैंने नहीं देखा कि कैसे थे पिता। माँ ही बताती कि मेरे पिता बहुत सुंदर और बहुत मेहनती थे। माँ यह भी बताती थी कि पिता मेहनती तो इतने थे कि सारे–सारे दिन काम करने के बाद रात में भी काम करते थे। माँ कई बार जब बहुत खुश होती, तब बताया करती थी। पिता माँ को बहुत प्यार करते थे। माँ पिता की यादों में ही जीती रही, नहीं तो नाना–मामा चाहते थे कि पिता के मरने के बाद माँ अपना घर बसा ले और जवानी में विधवा बनकर न रहे, लेकिन माँ ने उनकी एक न सुनी थी और पिता के बिना ही पिता की यादों के सहारे मुझे छाती से लगाए जीवन जीने के लिए प्रतिबद्ध थी।

माँ मुझे कई बार पूजा लगती तो कई बार वंदना और कई बार जी करता माँ की अर्चना करता रहूँ और वैसे ही हर माँ पूजा, अर्चना और वंदना ही तो होती है अपने बच्चों के लिए।

माँ देखने में सुंदर नहीं थी। खूब काली, मोटी और अनपढ़। मेरी माँ मुझे हमेशा देवियाँ सी लगती थी। मन भी चाहता था कि उसी के चरणों में सिर रखे सोता रहूँ। पिता के न रहने पर माँ अपनी सहेलियों से एक ही बात कहा करती–'ए जीजी! एक ही डरैया छोड़ि गये वे...जाई पे जिन्नगी निकार दिये।... ।' माँ ने इसी जीवन सूत्र को अपनी साड़ी की पल्लू में गाँठ सदृश बाँधा और मुझे पढ़ाया–लिखाया।

फिर वही बात, माँ पढ़ी–लिखी नहीं थी। पिता की मृत्यु के पश्चात् कमाने का कोई साधन भी नहीं था। शहर भी नहीं था, जो माँ लोगों के घरों में झाड़ू–पोछा–बर्तन करके या फिर कहीं फैक्टरियों में काम करके पैसा अर्जित करती और मुझे पढ़ाती–लिखाती और हम दोनों के पेट का आयतन भरती, लेकिन बड़ी हिम्मतवाली भी थी–माँ गाँव में जहाँ पतियोंवाली औरतें अपने बच्चों की देखभाल नहीं कर पाती थीं, वहीं माँ मुझे पढ़ाने–लिखाने से लेकर खाने–पहनने तक मेरा पूरा ध्यान रखती थी। माँ जादूगरनी नहीं थी कि कहीं से पैसा ले आती हो। माँ ने गाँव में भी काम ढूंढ लिया था। माँ खेत–द्वार से गायों, भैंसों का गोबर इकट्ठा करके कण्डे पाथती, खेतों में लकड़ियाँ बीनकर लाती, घास छीलती और बाजार में बेच आती। लोगों के खेतों में मजदूरी कर आती और जो पैसा मिलता, उससे मुझे पढ़ाती थी माँ और मैं मेहनत से पढ़ता भी था।

मैं पिता की तरह सुंदर नहीं था, जैसी छवि माँ ने पिता की बतायी थी। सही बताऊँ मैं पिता के पाँवों की छोअन भी नहीं था। मैंने एक दिन पूछा भी था माँ से, 'माँ! मैं इतना कुरूप क्यों हूँ?' तो माँ ने जवाब दिया था, 'बेटा! मैं तेरे पिता के न रहने के बाद तेरी अच्छी देखभाल नहीं कर पाई, शायद इसीलिए तू...।' माँ बात को घुमाकर अपनी धोती की पल्लू से अपनी आँखें पोछती हुई चली गयी थी। मैंने फिर माँ से कभी अपनी कुरूपता के बारे में नहीं पूछा। हालाँकि बड़ी चाची ने बताया था कि एक दिन रामौतार जब छोटे थे तब तुम्हें बड़ी माता निकली थी। उन दिनों बड़ी माता का कोप ज्यादा होता था। और तुम रंगरूप में अपनी माँ पर गये हो। ऊपर से बड़ी माता का प्रकोप, इसलिए तुम देखने में सुंदर नहीं लगते, लेकिन उससे क्या...हो तो तुम खूब होशियार। बड़ी चाची ने बात साफ कर दी थी। माँ का रंग और माँ का ही शरीर लेकर बड़ी माता का प्रकोप लिये में खूब पढ़ता रहा, लिखता रहा और धीरे–धीरे मैंने दसवीं कक्षा पास कर ली। जिस दिन दसवीं कक्षा का परिणाम आया, मैं जिले में प्रथम स्थान पर था। माँ की खुशी का पारावार नहीं था। माँ उसी शाम को पास में मुसलमानों के कब्रिस्तान में बने पीर बाबा पे चद्दर चढ़ाने गई थी। पूरे मुहल्ले में माँ ने बुलौआ दिया था, रामौतार पास होइ गयो...चलो भैंन पीर बाबा पे चद्दर चढ़ाइ आए।' और कोई जलन तो कोई माँ के साथ सहानुभूतिवश चली गयी थी। चादर मेरे ही हाथों से चढ़वाई थी। मौलवीजी ने दोनों हाथ फैलाए, न जाने क्या–क्या कहते रहे। माँ आँखें बंद किये वहीं पीर बाबा की मजार पर सिर रखे कुछ बुदबुदाती रही थी।

दसवीं पास करने के बाद, जबतक ग्यारहवीं में मैं दाखिला लेता, मैंने पॉलिटेकनिक का फॉर्म भर दिया था। सही समय पर परीक्षा हुई। परीक्षा का परिणाम आया और मैं पास हो गया था। मैंने माँ को बताया था तो माँ के पैर जमीन पर नहीं पड़ रहे थे। 'तुमाओ लला खूब बड़ी पढ़ाई में पास होइ गयो... रामोतार के बापू।' मैंने देखा था उस दिन माँ की आँखों में आँसू थे, लेकिन उनमें विश्वास भी था।

क्योंकि मैंने कम्पटीटिव एग्जाम बहुत अच्छे नंबरों से पास की थी, इसलिए जिले के ही पॉलिटेकनिक संस्थान में सिविल इंजीनियर के रूप में मेरा एडमीशन हो गया। शुरू–शुरू में गाँव के मास्टर चाचा ने मेरी मदद की थी–'भाभी! तुम चिंता मत करो, रामोतार के लिए जितने भी पैसे या जैसी भी मदद होगी मैं करूँगा। आपका बेटा देखना एक दिन बहुत बड़ा आदमी बनेगा।' माँ ने एक बार फिर ऊपर की ओर हाथ जोड़ दिये थे।

मेरा एडमीशन हुआ। मैंने मेहनत से पढ़ा। तीन साल की पढ़ाई मैंने तीन साल में ही पूरी कर ली, जबकि लगभग अन्य छात्र चार–पाँच साल में पूरी कर पाए थे। मैं खूब अच्छे नंबरों से पॉलिटेकनिक का डिप्लोमा करके पास हुआ था।

माँ बहुत खुश थी, तो माँ की कुछ सहेलियाँ दुखी भी थी, क्योंकि उनके बच्चे अभी भी नवी–दसवीं कक्षा में ही जूझ रहे थे। खैर...

अब मैं समझदार हो गया था। कई कामों में माँ का हाथ भी बँटा देता था। हालाँकि माँ मना भी करती थी और इसी दौरान मैंने नौकरी के लिए कई जगह फार्म भरे, उनमें से कई के इंटरव्यू दिये और मैं रेलवे में जूनियर इंजीनियर के लिए चुन लिया गया। माँ ने एक बार फिर खुशी के आँसू छलकाए थे। मैंने अपनी नौकरी दूसरे शहर में की थी। एक दो महीने मुश्किल से निकाले और फिर जैसे ही मुझे सरकारी आवास मिला, मैं अपनी माँ को साथ ले आया था। हमारे सभी दुख मिट गये थे। माँ की पूजा पूरी हो गई थी, फिर भी माँ रोज ही पूजा–अर्चना करती थी और कई बार पिता को याद करके बिलखने भी लगती थी, 'रामोतार कित्तो बड़ो आदमी बन गयो आजु तुम होते तो देखते।' लेकिन पिता तो थे ही नहीं, सो कैसे देखते।'

मेरी नौकरी की बात धीरे–धीरे सारी रिश्तेदारों में फैल गई। मेरे पिता की मृत्यु के बाद मेरे जिन रिश्तेदारों ने मेरी माँ को संसार के झंझावातों में अकेले जूझने को छोड़ दिया था, अब सगे सहोदरे बनने लगे थे और इन्हीं सगे–सहादरों में कामता मामा भी थे। कामता मामा को अम्मा हमेशा कमतुआ ही कहती थी। पिता के मरने के पश्चात् मामा ने कभी पलटकर नहीं देखा था। मेरी नौकरी की सुनी, तो जिजी–जिजी करता हुआ आ गया था।

माँ ने कामता मामा को बड़े सम्मान के साथ बैठाया था। उसे अपनत्व दिया। उसे प्यार दिया।

'जिजी एक बात कहन चाहत थे तो ते।' कामता मामा से यह बात उस समय शुरू की थी जब माँ उसे खाना परोस रही थी। 'बोले' –भइया! माँ ने थाली सजाते हुए पूछा था।

'जिजी! रमोतार को ब्याव कल्लि लेती।' कामता मामा मुझे

रामअवतार नहीं रमोतार ही कहता था।

'ऐ भइया, हमारे रामोतार को तो बापहु नांहि है...बाप बालिन की तो शादी होति नांहि...भइया काहे केले मजाक कत्तु है।'–माँ बोली थी। माँ नहीं जानती थी कि उसका बेटा अब नौकरी करता है और नौकरी करनेवाले की शादी...।

'देखु जिजी हमारे पास देन–लेन के ले तो कछु है नाहिं...कंतिया तो तूने देखी ही है। नांहि देखी...जरूर देखी हुइए। जिजीबाय अपनी बहू बनाए ले..बाउकी जिन्नगी संभर जइए और मैं हूँ गंगाजी हनाय लिएँ।'

अगर मामा की भाषा की छोड़ दें तो सीधी बात ये थी कि मामा अपनी बेटी की शादी मुझसे करना चाहता था।

'हम कहाँ मने करत है। रामोतार को तू मनाइले।' माँ ने अपनी स्वीकृति दे दी थी। माँ ने पूछा भी था मुझसे–'ऐ लला! बू कमतुआ अपनी लौंडिया के ले तेरो ब्याहु कन्नो चाहत है, तू हाँ करे तो बताए दे और...।'

माँ! कामता मामा की लड़की मैंने देखी है...माँ! वह तो बहुत सुंदर है..माँ...मैं... मेरे मुँह पर चेचक के भयानक दाग...रंग काला...मोटा सा मैं.... देखले माँ...जो तुझे अच्छा लगे....मैं...' मैंने अपना पक्ष रखा था।

माँ कुछ नाराज सी लगी थी, मतलब मैं जा समझे तोय कोइ और लौंडिया पसंद है।'

'नहीं...नहीं...न...न...न माँ...नहीं...बिल्कुल नहीं। जैसा तुम कहो वैसा ही होगा।' माँ को नाराज होते देख मैं बिलबिलाने लगा था।

'नांहि तेरे मन में होइ सो बता...लला! अब तू नौकरी पेसावाली होइ गयो...अब का...।'

माँ का गुस्सा कब्जे में ही नहीं आ रहा था और मैं परेशान होने लगा था। मैंने माँ को अपनी बाँहों में भर लिया था। लेकिन माँ की नाराजगी दूर ही नहीं हो रही थी। तभी मुझे अपना एक ही तरीका याद आने लगा था। मैंने माँ को अपनी बाँहों से अलग करते हुए कहा था, 'तो ठीक है' और मैं रोने बैठ गया। पहले भी ऐसा होता था, जब मुझे अपनी जायज या नाजायज बात मनवानी होती तो मैं 'तो ठीक है' कहकर रोने बैठ जाता था। माँ खुद–ब–खुद मान जाती थी। इस बार भी माँ मान गई थी।

और मेरी शादी कामता मामा की बेटी कांति के साथ तय हो गयी थी। जहाँ मामा खुश था, वहीं माँ खुश थी और क्योंकि मेरी माँ खुश थी, इसलिए मैं भी खुश था।

दो–तीन महीने के अंतराल पर मेरी शादी हो गयी थी। कांति मेरा घर मेरी पत्नी बनकर आ गई थी। वह माँ को माँ नहीं कहती थी, बुआ ही कहती थी और माँ उसे बहू नहीं कहती 'लली' ही कहती थी। और मैं माँ को खुश देख–देखकर बल्लियों उछला करता था।

मेरी नौकरी में रेलवे के पुल बनवाना, प्लेटफॉर्म बनवाना, आफिसर्स क्वार्टर्स बनवाना अर्थात् टोटल कंट्रक्शन का कार्य था। ठेकेदार से अनाप–शनाप पैसा हमारे घर आता था। मैंने गरीबी देखी थी, दुख उठाए थे, माँ के हाथों के छाले देखे थे, पीड़ा झेली थी, कष्ट सहे थे। सो मैं खूब रिश्वत लेता था। कई बात तो परसेंटेज के हिसाब से भी लेता था। ठेकेदारों को कोई आपत्ति नहीं होती और इस पैसे को मैं ऊपर तक एक्जीक्यूटिव इंजीनियर, सुपरेन्टेंडेंट इंजीनियर, एकाउंटेंट, कैशियर, क्लर्क, चपरासी तक बाँटता था। ऑफिस के लोग मुझे बहुत मानते थे। चाहे लालच ही कहें, पूरा ऑफिस मेरा सम्मान करता था।

माँ खुश थी। माँ को मैं फूलों से तौलकर रखता था। कांति खुश थी और इस खुशी–खुशी में कांति ने एक दिन कहा था–'सुनो।'

मैंने कहा, 'हाँ, क्या हुआ कान्ति?'

'मैं माँ बननेवाली हूँ।' और इतना कहकर वह मुझमें समा गयी थी। मेरी खुशी का पारावार नहीं था। मैं माँ के पास गया था। माँ को बताया। माँ ने सिर्फ आसमान की तरफ अपनी धोती का आंचल फैला दिया था। उस दिन मैंने देखा था माँ की आँखों में समुंदर हिलोरें मार रहा था।

ठीक नौ महीने बाद...तुम पैदा हुई थी। तुम्हें पाकर माँ स्वर्ग में उतर जाना चाहती थी। माँ की खुशियों को पंख लग गये थे। माँ पुराने विचारों की जरूर थी, लेकिन बेटा–बेटी में उसे कोई भेद नहीं था। और ये जो तुम मुझसे बार–बार कहती हो कि पापा! आपने मेरा नाम इतना पुराना क्यों रखा। सच बताएँ, तुम्हारा ये नाम माँ ने ही रखा था। रामा। मैंने पूछा भी था, 'माँ! तुमने बेटी का नाम रामा क्यों रखा?'

'हाय दइया!....तेरो नाव रामोतार है तो तेरी बिटिया को नाव रामा ...तेरे नाव पे ई तो धरो है....देखो तो। तर्क था या माँ का प्यार कोई नहीं जानता। हालाँकि मैं तो तुम्हें हमेशा रोमा ही बुलाता था। माँ शायद जान पाती थी कि मैं तुम्हें रामा नहीं रोमा जान–बुझकर कहता हूँ। तभी तो कहा करती थी–रोमा नाय, रामा कहो...देखो तो रामोतार इतनो बड़ो आदमी होइ गयो...अभही ढंग से नाव तक नाय ले पातु।'

खैर माँ की लीला, माँ ही जाने।

तुम्हारे पैदा होने के ठीक दसवें महीने में तुम्हारी माँ मुझे छोड़कर चली गई थी। कहाँ गई। कोई नहीं जानता था। उस दिन मैं साइट से आया था। मैंने गाड़ी बाहर खड़ी की और अंदर आया तो माँ बिलख–बिलखकर रो रही थी–'लला! कंतिया चली गई...लला बाय कोइ भजाए ले गयो...लला वा कछु ले नाहिं गई...तुमाओ एक तुनिकाउ नाई छुओ बानो...लला...।'

मैंने सुना तो सन्न रह गया। कांति ने आखिर ऐसा क्यों किया? मैं तो उसे खूब प्यार करता था। पैसों के बारे में कभी उससे नहीं पूछा। कभी उससे एक शब्द नहीं बोला। उसने बहुत बुरा किया। मुझसे कोई गलती हुई थी तो बताती...शायद मैं सुधार लेता...।

माँ रोए जा रही थी, 'लला! अब का मोंह दिखाइएँ...लला मेरे घर को नजरि लग गई काऊ की।'

मैंने माँ को हिम्मत बँधाई थी, 'मत रो माँ, अगर कांति हमें अपना समझेगी तो आ जाएगी और जब आ जाएगी तो पूछेंगे उससे। लेकिन कांति आने के लिए नहीं गई थी, सो आती कैसे? वह कभी नहीं आई।

और इसी दुख में एक दिन....मैं जब अपने ऑफिस में था तो मेरे घर में काम करनेवाली आया ने फोन किया था। आया को तुम जानती ही हो। तुम्हारी बसंती आंटी जिसे तुम कितनी बार ममी, ममी बोल देती थी, 'साब माँ...माँ...साब।'

'क्या हुआ माँ को।' मैंने पूछा था बसंती से।

'साब घर आ जाओ अभी के अभी माँ...माँ।' बसंती फोन पर ही बिलख रही थी।

आफिस से मैं घर आया था। माँ हम सभी को छोड़कर चली गई थी। मैं अपनी पूरी ताकत लगाकर रोया था तो लगा था कि सैलाब आ गया और उसमें सब कुछ बह जाएगा, लेकिन सैलाब नहीं आया था और कुछ भी नहीं बहा था।

माँ का अंतिम संस्कार करके घर लौटा था। माँ, कांति के चले जाने के कारण सदमा, अपमान, उसका बिछोह बर्दाश्त नहीं कर पाई थी और तब मुझे लगा था कि लाखों–करोड़ों रुपयों के अंबार लगानेवाला मैं निर्धन हो गया था।

अब मेरे सामने सबसे बड़ी समस्या तुम्हें पालने–पोसने की थी। तुम्हारी बसंती आंटी ने मेरा खूब साथ दिया। उन्होंने तुम्हें माँ के समान पाला। तुम्हारी देखभाल में कोई कसर नहीं छोड़ी। समाज का मान–अपमान सहा और एक दिन जब कामता मामा ने आकर तुम्हें बसंती के हाथ में देखा तो कहा

था–'भांजे! अब समझा, मेरी कांति क्यों चली गयी तुम्हें छोड़कर।'

मैंने सिर्फ इतना ही कहा था, 'मामा! अगर थोड़ी भी शरम बची हो तो ...मेरे घर...तुम कभी...भी मत। तुम्हारी बेटी मेरी माँ की हत्यारिन...।'

कामता मामा चले गये थे और आजतक नहीं आए। तुम धीरे–धीरे बड़ी होने लगीं और जब मुझसे अपनी माँ के बारे में पूछती तो मैं यही कह देता, 'बेटा! तुम्हारी माँ भगवान के पास चली गयी है।' तुम क्या समझती क्या नहीं, मैं नहीं जानता। कई बार तुम पूछती, 'पापा! आपकी वाइफ कहाँ है?' मैं हमेशा यही कहता, 'बेटा! मेरी वाइफ भगवान के पास चली गयी है।

तुम सिर्फ अच्छा कहकर रह जाती। मैं अंदर–अंदर टूटने लगा था। धीरे–धीरे तुम थोड़ी समझदार हुई तो मैंने अपना ट्रांसफर कानपुर में करवा लिया। नौकर–चाकर तुम्हारी देखभाल में चौबीसो घंटे रहते।

तभी एक दिन...

मैं साइट पर गया था। एक्चुअली ठेकेदार ने बुलाया था। काम लगभग पूरा होने को था। बहुत पेमेंट का मसला था। ऑफिसर्स क्वार्टर्स बन रहे थे। मैं एक–एक कमरे को देख रहा था कि...कि..मेरी नजर मेरे घर में दूध बेचनेवाले दुधिया पर पड़ी थी। ये वही दूधिया था जो मेरे घर रोज दूध देने आता था, जब तुम अपनी माँ के पेट में थी। दूधिया बहुत सुंदर था। रंग उसका खूब गोरा। छरहरा सा बदन। बहुत ही करीने से बाल सजाता था। बहुत ही शऊर से रहता था वह। अरे रामधन! तुम...तुम यहाँ क्या कर रहे हो।' मैंने उसके हाथ में तसला और फावड़ा देखा तो समझ गया था कि वह मजदूरी करता है। जब मैं उससे बातें कर रहा था, तो उसके पीछे एक औरत गंदी–गंदी साड़ी पहने, हाथ भर लंबा घूंघट खींच खड़ी थी। उसकी तरफ देखकर मैंने कहा, 'अच्छा अब दूधिया का काम छोड़ दिया। मजदूरी करने लगे हो। कोई बात नहीं। काम कोई भी हो छोटा–बड़ा थोड़े ही होता है। बस बेईमानी का न हो, मेहनत का हो...अच्छा–अच्छा अब समझा दोनों जने मेरा मतलब पति–पत्नी एक साथ काम करते हो। चलो अच्छा है। ये ठेकेदार तुम्हें परेशान तो नहीं करता। फिर मैं ठेकेदार की ओर मुँह करके बोला था। चौधरी! रामधन मेरे घर में दूध बेचने आता था। बड़ा नेक दिल आदमी है।....तंग मत करना...नहीं तो... और हाँ इन्हें और इनकी पत्नी को कोई परेशानी नहीं होनी चाहिए और आपको इनसे कोई दिक्कत तो तो मैं सोल्व कर दूँगा। समझे तुम।'

ठेकेदार–'जी साहब! जी मालिक' ही बोल पाया था कि रामधन की पत्नी जो घूंघट निकले खड़ी थी, बड़ी जोर से रोई। 'क्या हुआ रामधन तुम्हारी पत्नी को।' मैंने रामधन से पूछा था। रामधन बेर के पत्ते की तरह कांप रहा था।

अरे रामधन क्या हुआ, कोई गलती कर दी क्या। कोई बात नहीं ठेकेदार को बोलता हूँ मैं। अबसे कुछ नहीं कहेगा। और जैसे ही मैं ठेकेदार की ओर मुँह करके कुछ बोलना चाहा था कि रोक दिया रामधन ने मुझे।

'हुजूर! माफ कर दो मुझे...ये...। फिर अपनी पत्नी की ओर देखकर बोला था–'मालकिन...।'

'क्या' मुझे लगा था सारे आफिसर्स क्वार्टर्स आपस में गडमड हो रहे हों और हरहराकर मुझपर ढह जाना चाहते हों। मैं वहाँ खड़ा नहीं रह सका था।

गाड़ी स्टार्ट की थी मैंने और सिर्फ इतना ही बोला था ठेकेदार से, 'इन दोनों को मेरे पास गेस्ट हाउस लेकर पहुँचो।' मैं जैसे ही गेस्ट हाउस पहुँचा उसके दो घंटे बाद ही ठेकेदार की जीप में बैठकर रामधन और कांति गेस्ट हाउस पहुँचा दिये गये थे और मेरे सामने खड़े थे।

दोनों खड़े–खड़े काँप रहे थे।

मैंने कांति अर्थात् रामधन की पत्नी अर्थात् तुम्हारी मम्मी....की ओर देखकर कहा था–'आपसे एक बात जानना चाहता हूँ कांति।

'जी'

आपने मुझे क्यों छोड़ दिया। मुझसे क्या भूल हो गई थी–'मेरे पास क्या नहीं था–गाड़ी, बंगला, बैंक बैलेंस, नाम, शोहरत, इज्जत।'

'साब' कांति काँप रही थी।

डरने की जरूरत नहीं है। मैं तुम दोनों का कोई बुरा नहीं करूँगा। सिर्फ एक बार...एक बार मेरा अपराध बता दो कांति! मैं लगभग रूँआसा हो रहा था।

'साब! आपके चेहरे पर माता चेचक के दाग हैं। आप काले हैं और मोटे भी, जबकि ये रामधन...।' इसके पहले कांति कुछ और बोलती मैंने रोक दिया था उसे।

मैं जान गया था अपना अपराध।

मैंने ठेकेदार से कहकर उन्हें साइट पर छुड़वा दिया था।

मैं उस जगह आल इन आल था। मैं कुछ भी निर्णय ले सकता था। मैंने अपने अधीनस्थ को बुलवाया था, 'सुनो।'

'जी' मेरा अधीनस्थ हाथ बाँधे खड़ा था।

आफिसर्स क्वार्टर्स पर रामधन और उसी पत्नी कांति काम करते हैं। उन दोनों को साइट के आफिस में स्थायी तौर पर रख लो। उनके कन्फर्मेशन के कागज ठीक एक घंटे तैयार कर दिये थे। मैंने उन दोनों के चपरासी के पद के लिए कन्फर्मेशन के आर्डर पर साइन कर दिये थे।

और ठीक अगले ही दिन...मैंने बड़े साहब से कहकर अपना ट्रांसफर कानपुर से यहाँ करवा लिया था।

मेरी पूरी जीवन–व्यथा को सुनकर मेरी बेटी रोमा सिर्फ इतना ही बोली थी–'पापा!' और मेरे गले से लगकर खूब रोई थी। बाद में वह कब चुप हुई, मुझे पता नहीं।

लघुकथा

एक पीएच.डी डिग्री होल्डर की आत्मपीड़ा

अंजना कुमारी
बरनपुर (पश्चिम बंगाल)
मो. 8918721213

आज अश्रुओं से तकिया गीला हो गया। वर्षों की प्रतीक्षा कहीं न कहीं टूटती–बिखरती सी लग रही थी। सपनों का संसार धूमिल होता प्रतीत हो रहा है। आज निर्मला चालीस वर्ष की हो चुकी है। कुछ वर्ष पहले की तो बात है। निर्मला एक मध्यम परिवार में पैदा हुई, पली–बढ़ी; किन्तु उसके सपने आधुनिकता की दौर में काफी हद तक उसके अस्तित्व को प्रभावित किये हुए थे। चार भाई–बहनों में वह सबसे छोटी सभी की चहेती न जाने किन सपनों में खोई रहती। संस्कार तो उसे विरासत में मिली। संस्कारों की परंपरा लिए हुए वह आधुनिक मानसिकता के साथ समाज में अपनी पहचान बनाना चाहती थी। वह अपनी सपनों को पूरा करने के लिए स्वावलंबी होना चाहती थी।

निर्मला सोलह वर्ष की अवस्था में पारिवारिक और सामाजिक संघर्षों से जूझती हुई मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। उसे सपनों को पंख मिल चुके थे। वह कॉलेज में लेक्चरर बनना चाहती थी। प्रथम बार में वह जीवन के लक्ष्यों को निर्धारित करने में समर्थ न हो सकी, क्योंकि उम्र के जिस पड़ाव में उसने कदम रखा था, उस पड़ाव में किसी दृढ़ निश्चय पर पहुँचना कठिन था।

निर्मला अपने पिता के अरमानों को भी पूरा करना चाहती थी। पिता और परिवार की सारी आकांक्षाएँ उस पर टिकी थीं। उसकी प्रतिकूल आर्थिक परिस्थितियाँ उसकी मानसिकता को शिथिल नहीं कर पा रही थी। इन्हीं प्रतिकूल परिस्थितियों में उसने इंटरमीडिएट की परीक्षा अच्छे अंकों में पास कर अपने अस्तित्व का परिचय दिया। केवल परिवार ही नहीं, समाज, संबंधी सबों ने उसके अस्तित्व को धीरे–धीरे स्वीकारना प्रारंभ कर दिया था। अब उसके समक्ष अपने क्षेत्र को निर्धारित करने का प्रश्न खड़ा था। काफी विचार–विमर्श के बाद निर्मला पारिवारिक सहमति के साथ बी.ए.(स्नातक) में एडमिशन ले लिया।

यौवन के केन्द्र पर खड़े होकर एक ओर वह पिता के सपनों के साथ–साथ अपने सपनों को पूर्ण करना चाहती थी और दूसरी ओर माँ ने अपने समक्ष विवाह–संस्कार का भी जिक्र किया था। माँ ने कहा था कि यदि वह अधिक पढ़–लिख गयी तो समाज में दहेज–प्रथा के वर्चस्व के कारण से वर प्राप्त नहीं होगा। बी.ए. पास करने के उपरांत माँ ने उसकी शिक्षा पर पूर्ण विराम लगा दिया। निर्मला के पंख असमंजस अवस्था में फड़फड़ा रहे थे। वह अपनी शिक्षारूपी पंखों की सहायता से समाजरूपी आकाश में उड़ना चाहती थी। विवाह ही एक ऐसा मार्ग था, जिसपर चलकर वह अपने लक्ष्य को पा सकती थी। उसने परिस्थितियों से लाचार होकर अपनी हामी भर दी।

कई दिनों के बाद वह एक ऐसे जीवन में प्रवेश कर गई, जिसमें केवल जिम्मेदारियाँ थीं, सपने नहीं। नूतन भावनाओं के साथ वह जिम्मेदारियाँ तो निभा रही थी, किन्तु हृदय में कहीं–न– कहीं अधूरे सपनों की टीस भी थी। निर्मला के पति एक विचारवान और सहयोगी व्यक्तित्ववाले थे। निर्मला के सपनों को उन्होंने आत्मसात कर लिया। उन्होंने निर्मला के पंखों को ऊर्जा देना प्रारंभ किया।

निर्मला अब एम.ए. की छात्रा थी। अभी वह एक पुत्र की माँ बन चुकी है। जिम्मेदारियाँ का सिलसिला फिर से प्रारंभ हुआ, किन्तु सहयोगी पति के कारणवश उसे अपना पथ पर धीरे–धीरे दो वर्ष बीत गये। इसी बीच निर्मला एम.ए. पास कर एक विद्यालय में बतौर शिक्षिका नियुक्त हुई, किन्तु वेतन काफी अल्प था। अभी वह जीवन की वास्तविकता से अंजान अपने सपनों को पूर्ण करने का जी–तोड़ प्रयास कर रही थी। वह कॉलेज में लेक्चरर बनना चाहती थी और इसके लिए वह पीएच.डी. करना चाहती थी। उसके पिता को किसी संबंधी ने कहा था–''बेटी को पढ़ा–लिखाकर क्या करेंगे?बेटी को डॉक्टर बनाना है क्या?'' निर्मला का स्वप्न था कि उसके नाम के प्रथम में डॉ. लगे।

निर्मला के ससुरालवालों ने भी उसका सहयोग दिया। उसने पीएच. डी. में एंट्रेंस (प्रवेश परीक्षा) पास कर शोधकार्य में पंजीयन कर लिया। पाँच वर्षों की कठिन तपस्या के बाद आज निर्मला केवल निर्मला नहीं रही, बल्कि डॉ. निर्मला हो गयी। इन पाँच वर्षों में उसने कई प्रतिकूल परिस्थितियों का भी सामना किया। समाज संबंधी सभी ने उसे काफी बधाइयाँ दी थीं। पिता के प्रसन्नता की सीमा न रही। अब उसे अपने सशक्त अस्तित्व का अनुभव होने लगा था। इसी क्रम में उसकी अवस्था 32 वर्षों की हो चुकी थी। अब वह दो सुपुत्रों की माता बन चुकी थी।

अब डॉ. निर्मला ने आवेदन की ओर रुख किया। कई रिक्त स्थानों पर उसने आवेदन किया, किन्तु कहीं बुलावा तो कहीं रिक्त स्थान कब और कैसे पूर्ण हो गये, पता ही नहीं चला। अभी भी उसके पंखों में गरमाहट थी। उसे लगता था कि कहीं न कहीं उसकी योग्यता निखार लायेगी, कभी न कभी वह लोगों के विश्वास में खरी उतरेगी। उसे विश्वास था कि महाविद्यालय या विश्वविद्यालय में बतौर प्राध्यापिका नियुक्त होकर वह समाज को एक नयी दिशा दे सकती है, किन्तु ऐसा नहीं हुआ। देश के कई राज्यों में महाविद्यालयों में कई स्थान रिक्त हुए, किन्तु डॉ. निर्मला की योग्यता साबित न हो सकी। उसके सहयोगी पिता ने भी उसे व्यंग्य करना शुरू किया–तुम किसी चीज के लायक नहीं हो। तुम्हारी औकात क्या है?आजतक किसी साक्षात्कार में पास न हो सकी। मैंने तुम्हारे पीछे इतनी मेहनत करके अपना समय बर्बाद कर लिया। उसके ससुरालवालों ने भी डॉ. निर्मला की योग्यता में अविश्वास करते हुए कहा–मुझे पता होता कि इतना खर्च करने के बाद भी वापस कुछ न मिलेगा, तो हमलोग इस विषय में न सोचते। यहाँ तक कि पता ने भी कहा–''शायद तुम्हारा भाग्य ही इतना खराब है कि इतनी अधिक शिक्षित होकर कुछ न कर सकी।''

आज निर्मला चालीस वर्ष की हो चुकी थी। वह अपना आत्मविश्वास खो चुकी थी। अपने जीवन के प्रियजनों में संवादों को सुनकर उसे लगने लगा कि शायद सपने देखकर उसे पूर्ण करने का प्रयास नहीं करना चाहिए था। आज सभी की नजरें उसके समक्ष एक प्रश्नचिह्न की तरह है। वह किसी की दृष्टि का सामना नहीं कर पा रही थी। वह केवल अल्पवैतनिक काम करनेवाली एक अध्यापिका बनकर रह गयी है। वह गुमनामी के अंधकार में डूबती जा रही है। इन्हीं सारी बातों को याद करते हुए आज भी डॉ. निर्मला का तकिया अश्रुओं से भींग गया। आज उसके पंख फड़फड़ा नहीं रहे, बल्कि शिथिल हो गये। उसके सपनों में जान नहीं रहा। आज वह अपने अस्तित्व को ही अपने अंदर खोज रही है। वह चाहती है कि किसी भी शिक्षा व्यवस्था ऐसी हो कि किसी भी शिक्षा के साथ अन्याय न हो। किसी के साथ डॉ. निर्मला जैसी स्थिति उत्पन्न न हो।

कहानी

बुढ़ापे का बँटवारा

संदीप शर्मा
कृष्णा नगर, हिमाचल प्रदेश
मो. 094181–78176

गाँव का एक भारतीय व आज़ाद हिंद फौज का भूतपूर्व फौजी लगभग अपनी आँखों की आधी से ज्यादा रोशनी खो चुका, शहर की सीमा से बहुत दूर दो कमरों के एक छोटे से लकड़ी की छत वाले सलेटों के घर में अपनी बूढ़ी पत्नी के साथ ज़िंदगी के आखिरी समय में जीने के लिए अपने बूढ़े दिमाग पर बहुत ज़ोर लगाकर विचार कर रहा है। जिस इंसान ने दुश्मनों की गोलियाँ खाई हों, उसकी अपनी औलादें ही उसके अंदर छुपी बैठी जीने की ज़िद के भी इम्तिहान लेने लग पड़ी हैं।

बूढ़े फौजी शेरसिंह चौहान के लिए ज़िंदगी का आखिरी पड़ाव अब बहुत मुश्किल हो चला है। दो पुत्रों ने अपने–अपने घर अलग से बना लिए हैं। दोनों ने नौकरियाँ तो ले ली, बाप के आर्मी के कोटे से, पर ये भूल गए कि घर में आर्मी मैन अभी ज़िंदगी के आखिरी सफ़र तक साँसों से आजाद न होने की जंग लड़ रहा है। वस्तुतः जहाँ वह भूतपूर्व फौजी रह रहा है, वह कहने लायक भी घर नहीं है। घर के सामने बड़े बगीचे के एक हिस्से में एक छोटा–सा छप्पर है, कभी जो उसके नेपाली नौकर का बसेरा रहा है, उसका नौकर भी अब बूढ़ा होकर अपने घर नेपाल चला गया है, वह अब कभी फिर से न आएगा, यही कहकर गया था।

बगीचा गली सड़ी हुई डालियों से भरा पड़ा है और अब तो चोर उचक्के लड़के व गाँव के मुफ्तखोर औरतों व मर्दों ने उस बगीचे के अधपके फलों को भी चुरा लिया है। कभी यही बगीचा उस बूढ़े फौजी व नेपाली नौकर की निगाहों के साए में अपने आपको सुरक्षित समझता था और इसी सुरक्षा में फलों से लद जाता था। तब गाँव के चोर उचक्के आते तो थे पर फलों को ललचाई नजरों से देखने के बाद बूढ़े होते फौजी से भिक्षा में कुछ फल प्राप्त करते थे। बगीचे की बाड़ अस्त–व्यस्त होकर कई घुसपैठियों के लिए चोर रास्ते बना चुकी है।

भूतपूर्व फौजी का तीसरा बेटा फ्रीडम फाइटर के नाम का फायदा न उठा पाया और साथ में सरकारी नौकरी भी न प्राप्त कर पाया, कुल मिलाकर ज़िंदगी में बेरोजगारी व गरीबी का साया उस भूतपूर्व फौजी के बेटे पर मँडराने लगा था। फौजी बाप ने अपने हाथों से बनाया पक्का मकान अपने छोटे बेटे दिलीप के हाथों सौंप दिया और पुरखों के जमाने से बँटती आ रही कुछ ज़मीन में उसे जितनी हो सके, खेती करने की इजाज़त दे दी और अपने लिए अपना पुश्तैनी स्लेटों का मकान चुन लिया, जो छोटे बेटे के पक्के नए मकान से मात्र एक कोस दूर था। इस मकान को बनाने का एकमात्र कारण उसका कच्ची सड़क के करीब होना था, जो कभी न कभी तो पक्की होगी।

ज़मीन बंजर होती गई, क्योंकि छोटे बेटे दिलीप ने उस ज़मीन की नुहार को नहीं पहचाना और बदलते समय की कई कोशिशों के बाद भी वह अपना घर चलाने में असफल रहा।

पेंशन की चल व अचल संपति भी बूढ़े ने अपने तीन लड़कों को पहले ही बाँट दी थी। अपनी सारी कमाई बारी–बारी उनकी पढ़ाई पर खर्च की। फिर फौज का मिला पैसा उनकी शादियों में खर्च कर डाला, फिर तीन में से दो जब सरकारी नौकरियों में दूर शहर निकल गए तो मात्र सबसे छोटा कम पढ़ा लिखा लड़का अपने बाप के खेतों से अपनी किस्मत के कुछ नए बीज उगाता रहा, फिर वह भी थक गया और बाप की पेंशन की कुछ मदद से निठल्ला बनता गया।

अब छोटे लड़के दिलीप और उसकी पत्नी ने अपने हिस्से के खेतों में बीज डालने की इच्छा का भी परित्याग कर दिया है। वे बूढ़े माँ–बाप को छोड़कर गाँव के एक कोने में अपने उस सड़क किनारे के घर में रहने लग पड़े थे, जो इन दोनों ने अपने बाप बूढ़े भूतपूर्व फौजी की मदद से बनवाया था। बूढ़ा बाप और उसकी बूढ़ी पत्नी ज़िंदगी के आखिरी पड़ाव में पुत्रों की सेवा भाव के बिना तड़पने लगे थे।

फिर बहुत सालों के बाद जब उसके बहू–बेटे वापिस इस बगीचे से घिरे अपने पुराने पुश्तैनी घर में नहीं आए तो बूढ़े फौजी ने सोचना शुरू कर दिया कि अब या तो अकेले मरना पड़ेगा या फिर कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाए, जो कुछ तनख़्वाह लेकर उनकी सेवा करना शुरू कर दे, वरना हालात बद–से–बदतर हो जाएँगे।

बूढ़ा बाप शेरसिंह चौहान एक दिन बहुत दुखी मन से अपनी पत्नी लाजवंती से बोला, ''सुनो जी, क्या दिन आ गए हमारे?तीन लड़के होते हुए भी हमारा यह हाल हो गया, अब किस देवता के पास जाएँ?जो इन औलादों को इतनी सद्‌बुद्धि दे। हम उनके बूढ़े माँ–बाप किसी वक्त इन पुत्रों को पैदा करके खुशी में जश्न मनाते रहे हैं।''

लाजवंती अंदर से दुख में डूबे मन से बोली, ''अब हमारा क्या कसूर है?कसूर तो हमारे बुढ़ापे का है जी, जो वह हमारे साथ इतने लंबे सफर तक चलता रहा, ताकि बीच मँझदार में हमें छोड़कर हमारा यह हाल कर सके।''

बुजुर्ग शेरसिंह बोला, ''तुम चिंता न करो भाग्यवान, मैं कोई रास्ता ज़रूर निकाल लूँगा, इन औलादों ने जिस तरह से हमें दुखी किया है, तू देखना, ईश्वर फिर इन्हें हमारे चरणों में गिरा देगा, मुझे पता है कि ये किस लालच में फँसे हैं, एक तो मैंने जब से पेंशन से इनकी मदद करनी बंद कर दी...। अब पेंशन है भी कितनी! तेरी व मेरी दवाइयों का खर्चा भी तो है। वे अपने लिए नई पगडंडियाँ बनाने लग पड़े और फिर वही पगडंडियाँ हमारे लिए काँटें बिछा गईं और फिर वे इस काँटों भरी राह पर लौटकर न आए।''

वक्त कटता गया। बड़ी कोशिश के बाद भी बूढ़े दम्पति को कोई पैसे लेकर भी सेवा करनेवाला न मिला। कुछ दिनों के बाद एक शाम बूढ़े फौजी का एक पुराना दूर गाँव का दोस्त मस्तू बगीचेवाले घर को ढूँढता हुआ वहाँ आ पहुँचा। उसने बगीचे को पार किया और छप्पर के बाहर खड़े होकर आवाज़ लगाई। सर्दियों के समय में बूढ़ा और बुढ़िया अंदर से उसे पुकारने लगे। मस्तू ने चरमराते दरवाज़े को खोला और अंदर घुस गया। अंदर का दृश्य बुढ़ापे और उनकी दशा पेश कर रहा था। दोनों ने अपनी–अपनी ज़िंदगी का हाल–बेहाल सब सुना डाला।

बूढ़े फौजी का दोस्त मस्तू बोला, ''देखो मित्र! तुम्हारा मानसिक व शारीरिक भय तुम्हें अपने आनेवाले भविष्य के कारण है, पर तुम बहादुर योद्धा रहे हो, तुमने कुछ तो ग़लतियाँ की हैं, या फिर तुम्हारा स्वभाव तुम्हारी औलाद के लिए ठीक नहीं रहा है। वे अपने सपनों के खातिर तुम्हारी बेदशा को भी समझ नहीं पाए। अब मुझे यह समझ नहीं आ रहा है कि उन्होंने तुम्हें अपने बच्चों के भविष्य के लिए त्याग दिया या फिर आधुनिक बनने की होड़ में वे तुम्हें बहुत पीछे तड़फता छोड़ गए।''

बूढ़े फौजी ने अपने दोस्त मस्तू को अपने नज़दीक खींचते हुए क्षीण आवाज़ में कहा, ''जबतक मेरा शरीर सही सलामत था। मैंने निरंतर काम किया और जो एक बाप कर सकता है, वह किया। मैंने लोक लाज़ में सारा पैसा इन बच्चों के ऊपर खर्च कर दिया, यहाँ तक कि इस अभागी बुढ़िया ने अपने चाँदी और सोने के गहने भी बहुओं के शरीरों पर टाँग दिए, अब यह कसूर किसका है, यह तो ईश्वर ही जाने, पर कोई उपाय भी होगा, हमें वर्तमान और भविष्य दोनों ही नज़र आ रहे हैं। आकाश हमेशा काला नज़र आ रहा है। हवा के झोंकों से भी अब डर लगने लगा है, बारिश की बूँदें जब झरती हैं तो हम अपने सूखे शरीरों को इस स्लेट के मकान में दुबका लेते हैं, पेंशन का पैसा न होता तो शायद हम अब तक न बचे होते। मुझे तो इसी बात पर सबसे पीड़ा होती है कि जो बूढ़े इस उम्र में पेंशन भी नहीं पाते, होंगे उनका क्या हाल हो रहा होगा इस कलयुग में।''

मस्तू बोला, ''अब क्या बताएँ मित्र! तुम क्या सोचते हो कि मैं सुखी हूँ। मेरी तो पत्नी भी चल बसी है, तुम्हें तो पता होगा, अब मैं भी इसलिए जी पा रहा

हूँ कि हर महीने अपनी पेंशन का लगभग पूरा हिस्सा अपने पोते–पोतियों की इच्छाओं पर खर्च करता रहता हूँ, कभी एक बेटे तो कभी दूसरे बेटे के घर की चार दीवारों में अपने आपको कैद करता हूँ, अब ये कलयुग के बच्चे पाई–पाई का हिसाब करने लग पड़े हैं, इनका मन करे तो ये माँ–बाप के शरीर के टुकड़ों को काटकर भी हिसाब कर दें, जैसे कोई जवान मदमस्त शेर, हिरन के विनीत बच्चे को अपने मजबूत पंजे में जकड़कर उसकी जान से खेलता है, ठीक वैसे ही ये औलादें हमारी अबतक की सहेजी इच्छाओं के साथ खेल रहे हैं।

''जब इस हवा ने जिसे सोखकर हमने कई साँसें लीं, इस सूर्य की गर्मी से हमने अपनी ज़िंदगी की धाराओं को रोशनी दी, उन्होंने हमसे कोई हिसाब नहीं माँगा, तो ये क्यों हमारे पीछे पड़ गए हैं?जिस धरा पर फैले अनमोल जल को हमने शरीर से छान–छान कर बाहर फेंक दिया, जिस अग्नि की उन्मता से हमने अन्न को पकाया, जिस खेत की माटी से हमने अन्न–कणों के रस को सोखा, उन्होंने कभी हमसे हिसाब नहीं माँगा, कोई एहसान नहीं जताया, हमने शुष्क हवाओं में से भी आर्द्रता से महीन जल की बूँदों को सोखा, ये धरा, ग्रह, ये सितारे, महासागर, पर्वत, पहाड़ अपने एहसानों से हमें नहीं दबा रहे हैं। तो फिर ये क्यों इतने स्वार्थी बन गए हैं?''

मस्तू ने अपने दोस्त के लिए एक नया उपाय चुपचाप कान में बताया। शेर सिंह बोला, ''मस्तू भाई! ज़रा संदेश इस ढंग से पहुँचाना कि काम हो जाए, उन्हें भान न हो पाए कि हमें उनकी ज़रूरत है।''

मस्तू अपने बूढ़े फौजी दोस्त को अलविदा कहकर और भरोसा दिलाकर निकल गया। इसके बाद मस्तू अपने फौजी दोस्त के सबसे छोटे बेटे दलीप के घर की ओर रवाना हुआ।

किसी से पूछते हुए वह उनके पक्के मकान के प्रांगण में पहुँचा। घर के बाहर से आवाज़ लगा कर वह बाहर लकड़ी के फट्टों को जोड़कर बनाए बेंच पर बैठ गया। अंदर से बूढ़े फौजी की बहू बाहर निकली। ''जी आप किस काम से आए हैं?मेरे पति घर से बाहर गए हैं, आप आने का प्रयोजन बताइए।''

मस्तू ने अपने प्रपंच को पेश करना शुरू कर दिया, ''दूर गाँव से हूँ, अपने दोस्त के लिए एक सेवादार की नौकरी के लिए किसी औरत या मर्द की तलाश में हूँ, वह मेरा दोस्त इस काम के लिए अच्छी खासी तनख़्वाह भी देगा।''

तनख़्वाह के नाम पर उस औरत के जड़ मस्तिष्क में ऊर्जा की तरंगों का वेग बहने लगा, जो उनके लिए समय की माँग थी। ''मुझे क्या करना होगा, आशावान–सी आवाज़ में उस औरत ने पूछा।''

मस्तू ने कहा, ''ज़रा चाय पिला देना, तबतक तुम्हारे पति भी घर आ जाएँगे।''

''जी, जी! मैं तो बनाने ही वाली थी।''

वह औरत अंदर रसोई में चली गई। मस्तू ने देखा कि घर मात्र ढाँचा था। घर के बाहर भी इन्सानी कर्मों की मात्र कुछ ही निशानियाँ थी। न घर के बाहर कोई पशु था और आसपास उजाड़ पड़ा था, न फलदार पौधे न घास का ढेर। घर के अंदर भी कोई खास सामान न था, मात्र इकलौते पलंग फैले थे, मतलब इन निठल्ले दंपति की मेहनत से सजा घर कहीं नजर न आया। दो बच्चे मामूली कपड़ों में पड़ोस से आए।

फिर कुछ ही देर में उदास–सा दिलीप घर में पहुँचा। मस्तू को देखकर वह कुछ चौकन्ना हुआ। चाय के साथ दिलीप की पत्नी बाहर निकली, ''ये हमारे लिए एक नौकरी का न्योता लाए हैं अगर हमें मंजूर है तो।''

दिलीप शंका से भरते हुए बोला, ''नौकरी की तलाश तो है, खेती में अब कुछ ना रखा है, चार पैसे कई तरह की मेहनत के बाद नज़र आते हैं, पर काम देनेवाले के बारे में भी बताइए और काम क्या करना होगा?बच्चे नए कपड़ों को तरस रहे हैं, मजदूरी करके अपना बुरा हाल हो गया है, रोज़ काम भी नहीं मिलता है और न ही कोई खास हुनर है हमारे पास। लगता है ईश्वर ने हमारी फरियाद सुन ली है, आप ईश्वर का संदेश लेकर आए हैं।''

मस्तू मुस्कुराते हुए बोला, ''ईश्वर तो तब अपना आशीर्वाद बाँटेगा, जब आप उस काम के लिए सहमत हो जाएँगे।''

''अच्छा अब उस घर का पता बता दें, जहाँ नौकर की ज़रूरत है।''

मस्तू दूर सूखे खेतों की ओर देखते हुए बोला, ''वह मेरा एक बूढ़ा दोस्त शेर सिंह चौहान है, जो अपने लिए खाना पानी और कुछ देखभाल के लिए अपनी पचास प्रतिशत पेंशन तनख़्वाह में देगा। मैं उसी के लिए कई घरों में भटका हूँ।''

मस्तू की बात के बाद दोनो पति पत्नी के चेहरे फक्क पड़ गए। उनके चेहरों की बीच छुपी स्वार्थी आँखों में कई स्याह काले बादल तैरने लगे। मस्तू ने मौके को देखकर वहाँ से निकलने की सोची, ''अच्छा तो आप अपना फ़ैसला सोच समझ कर लेना और उस बूढ़े व्यक्ति से मिल लेना जो शायद तुम्हारी ज़िंदगी के कई तरह के कष्ट खत्म कर सकता है बशर्ते तुम्हारा इरादा उसके भी कष्ट दूर करने का हो।''

दिलीप और उसकी पत्नी ने कई बार सोचा। मजबूरी और उनकी विमुखता की हुई ग़लती के बीच उन्हें कई तरह के स्वार्थपूर्ण विचार भी आए। कुछ दिनों के बाद बूढ़े बीमार फौजी के पास उसकी सबसे छोटी बहू बैठी हैं, बीमार फौजी का बेटा बाहर बरामदे में बैठा है। वह आख़िरी फरियाद लेकर आई है, अगर इस बार फौजी पिघल जाता है तो वह यह मंजूर कर लेगी कि वह अब उन दोनों की सेवा में कोई कमी न छोड़ेगी। बदले में उस फौजी की शनैः शनैः बढ़ती पेंशन से कुछ हिस्सा उसे प्राप्त हो जाए। फौजी बूढ़े ने खाट पर पड़े–पड़े ऊपर छत की झड़ रही मिट्टी की ओर देखा और बोला, ''आख़िर तुमलोगों ने अपने अतृप्त मन की प्यास को जाहिर कर दिया है, पर गारंटी के लिए थोड़ी बहुत इन्सानियत को भी अपने साथ ले आती बहू।''

बहु ने चुप्पी साध ली थी। वह जिस इच्छा की प्रतिनिधि बनकर आई थी, वह चुप रहने और बूढ़े ससुर की मर्जी से पूर्ण हो सकती थी। बूढ़ा एकटक छत की ओर देखता जा रहा था। बदरंगी दीवारों के बीच दो खाटें, दो पुरानी कुर्सियाँ, एक खुरदरी मेज़ और इधर–उधर दवाइयों के खाली रैपर और शिशियाँ पड़ी थीं। यही अचल संपति अब बूढ़े के पास बची थी।

बिस्तर से सिर उठाते बूढ़े ने कहा, ''मुझे पता है कि चाहे ईश्वर ने तुम्हें मोहवश ही जोड़ा हो, पर फिर भी मैं बहुत खुश हूँ और ईश्वर का धन्यवाद करता हूँ कि उसने हमारी पुकार सुनकर व शायद मेरे द्वारा किए कुछ पुण्य कार्यों के फलस्वरूप चंद अच्छे सुकूनवाले पल चलते–चलते बाँट दिए हैं। बूढ़े की साँसें फूलने लगी। उसके हाथ तकिए के नीचे कुछ टटोलने लगे। बहू और उसका छोटा बेटा उसकी ओर तेज़ी से दौड़े। बूढ़े की ज़िंदगी के संगीत की आखिरी स्वर लहरियाँ थमने लगी थी। बुढ़िया बूढ़े के हाथ और पाँवों को अपनी हड्डियों में लिपटे कमज़ोर पड़ चुके हाथों से धीरे–धीरे मलने लगी, ताकि बूढ़े के ठंडे शरीर में कुछ जीवन तरंगों की तपस पैदा हो सके।

बूढ़े ने काँपते हाथों में अपनी पेंशन के सारे कागज बहू के हाथ में पकड़ाते कहा, ''मैं सब कुछ साफ़–साफ़ देख चुका हूँ, लेकिन मेरे प्राण तबतक नहीं निकलेंगे, जबतक मुझे तुम दोनों यह विश्वास न दिला दो कि तुम मेरी इस बूढ़ी पत्नी को अकेला नहीं छोड़ोगे, और बुढ़िया की सेवा भी वैसे ही होगी जैसी मैंने चाही है। मैं अब इसके सिर के ऊपर से अपने अधिकार व अपने फर्ज का साया उठा देना चाहता हूँ और तुम्हारी माँ को फिर से तुम्हारे हवाले कर देना चाहता हूँ।''

उसने अपने छोटे लड़के की ओर अश्रुपूर्ण आँखों से देखा और उसके हाथ पकड़कर कहा–''चाहे तुम रास्ते से भटक गए थे, पर मैं अब ज़िंदगी के आख़िरी पलों में यह समझ गया हूँ कि पैसा भी रिश्तों की डोरी को बाँधने के लिए मजबूत गाँठें बाँधने के काम आ सकता है। मुझे तुमसे कोई शिकवा नहीं, पर फिर भी यह उम्मीद करता हूँ कि तुम अपनी उस माँ का ख़्याल रखोगे, जिसने तुम्हें पालते वक्त सिर्फ एक ही समझने की भूल की थी कि पैसा भी ज़िंदगी में बच्चों व माँ–बाप के बंधन को तोड़ सकता है और मज़बूत बना सकता है।''

बेटे का सिर बहुत देर से झुका था, जब उसके हाथों में बूढ़े बाप की उँगलियाँ फँसने लगी और उनका बंधन और मजबूत हो गया तो उसने गर्दन उठाकर बाप की ओर देखा। बूढ़ा बाप तकिए की एक ओर लुढ़क चुका था, जो अब इस दुनिया में नहीं रहा।

कहानी

सीट नम्बर ३७ के सामने

डॉ. विनीता राहुरीकर
जाटखेड़ी, भोपाल
मो.–9826044741

ट्रेन अपनी मद्धम रफ्तार से चल रही थी। अजय अपने विचारों में खोया हुआ खिड़की से बाहर निर्निमेष दृष्टि से देख रहा था। खिड़की के बाहर एक–एक करके पेड़, पौधे, मकान, गाँव और पोखर–तालाब ट्रेन की ही गति से विपरीत दिशा में चले जा रहे थे। लेकिन अजय की दृष्टि में कुछ नहीं आ रहा था। वह तो शून्य में तकते हुए अपने अतीत को देख रहा था, जो कुछ ही घंटों पहले सच था, वर्तमान था; परन्तु अचानक ही ऐसा लगने लगा है कि जाने कितने बरसों पुरानी बात है। जबकि उसे घर छोड़े हुए मात्र छः घंटे ही हुए हैं, फिर भी ट्रेन के इस डिब्बे की इस सीट पर बैठने के बाद जैसे ही एक पूरा युगा गुजर चुका है और वो सारा जीवन पिछले जन्म की बात लगने लगी है।

एक–एक कर माँ, बाबूजी, नैना, सोना सब याद आने लगे और अजय की आँखों में आँसू आ गये। उसने खिड़की के सरियों के बीच मुँह करके आँखें पोंछ ली, ताकि सबको लगे कि हवा के कारण उसकी आँखों में पानी आ रहा है।

ट्रेन धीमी होते ही एक हिचकोले के साथ किसी स्टेशन पर रुकी। छोटा–सा कस्बा ही था। साधारण–सा स्टेशन। दस–बीस लोग प्लेटफॉर्म पर इधर–उधर हो रहे थे। एक खोमचेवाला, एक चाय का कंटेनर लिए हुए और एक समोसे की डलिया लिये हुए खिड़की से निकलने लगे।

चाय के कंटेनर को देखकर अजय को चाय पीने की इच्छा हुई। आज उसने चाय कहाँ पी है सुबह से। देर रात ही तो सबको नींद में छोड़कर चला आया था वह घर से और स्टेशन पर टिकट खरीदकर जो ट्रेन सामने दिखी उसी में बैठ गया था। उसने चायवाले को पास बुलाया और एक कप चाय ले ली उससे। दो घूँट चाय पेट में जाते ही जैसे भीतर जमा हुआ कोहरा छँटने लगा। उसने अपने आसपास देखा अब। पास में बैठे लोग उतर गये थे। सामनेवाली सीट पर एक वृद्ध दम्पति बैठे थे। सीट के नीचे चादरों की पोटलियाँ रखी थीं। एक लोहे का संदूक रखा था, जिसपर एक पुराना ताला टँगा था। ऊपर सामनेवाली सीट पर कोई मुँह ढँके सो रहा था। अजय चुपचाप चाय के घूँट भरने लगा। पिछले काफी समय से घर के हालात बहुत तंग चल हरे थे। उसका बापू दर्जी था। लोगों के कपड़े सिलकर जैसे–तैसे घर का खर्च चलाता है। छोटा–सा कस्बा होने से सिलाई तो ज्यादा मिलती ही नहीं। क्योंकि कस्बे में कमोबेश सभी तो गरीब या साधारण परिस्थिति के ही लोग हैं। माँ पासवाली बस्ती में बर्तन माँज कर खर्च में काफी हाथ बँट देती है और साथ ही लोगों के घरों में सिलाई के कपड़े भी ले आती है। नैना साड़ियों में फॉल लगा देती है। और सोना...

उसी सीट पर एक परिवार आ बैठा, पति–पत्नी और तीन बच्चे। दो लड़कियाँ एक लड़का सात–आठ साल का। अजय ने तीनों बच्चों को बड़े ध्यान से देखा। उसे अपना परिवार याद आ गया और उसकी आँखें फिर भर आयीं।

पति–पत्नी दोनों छोटी लड़कियों को अपनी गोद में लेकर उसकी सीट पर बैठ गये और लड़का सामनेवाली सीट पर वृद्ध दम्पति के साथ खिड़की के पास बैठकर बाहर देखने लगा। ट्रेन ने सिटी दी और थकी हुई–सी पटरियों पर रेंगने लगी।

अजय की सोच फिर अपने परिवार पर चली गयी। कस्बे के सारी स्कूल में तीनों की पढ़ाई हुई। पिता की इच्छा थी कि अजय तो कम–से–कम आगे पढ़ ले। माँ ने अपने कामवाले घरों से उधार ले–लेकर अजय को पास के शहर के कॉलेज में पढ़ने भेजा। जैसे–तैसे अजय बी.कॉम कर पाया। लेकिन ग्रेजुएट को नौकरी कौन देता है। अनपढ़ माता–पिता के लिए तो वह 'बहुत पढ़ा लिखा बाबू साहब' है, वे फूले नहीं समाते, उसपर गर्व करते; लेकिन बाहर के विशाल दुनिया में उसका कोई अस्तित्व ही नहीं है। न उसकी डिग्री किसी काम की, उनके लिए उसकी कीमत एक कागज के बेकार टुकड़े से अधिक कुछ नहीं। इधर माता–पिता की उम्मीदों और उधर बाहर दुनिया की उपेक्षा और निरंतर असफलता ने उसे बुरी तरह तोड़ दिया। अवसादग्रस्त हो गया। इससे तो वह अनपढ़ ही रहता तो अच्छा था, कम–से–कम मेहनत मजदूरी तो कर पाता। अभी तो वह अधर में लटक गया, अजीब हो गई है उसकी स्थिति। न वह बड़े बंगलों में रहनेवालों की गाड़ियाँ धो पाता, क्योंकि उसे वह काम छोटा लगता और न उसे कहीं ढंग की नौकरी ही मिल रही थी। पिछले चार साल से वह रोज दिनभर चप्पलें घिसकर शाम को गर्दन झुकाए माता–पिता और बहनों की आशाभारी आँखों को निराशा से झुका देता। रात में रोटी का कौर बड़ी मुश्किल से गले से उतरता। कोई कुछ नहीं कहता, लेकिन घरवालों की चुप्पी दिन पर दिन उसे असह्य होती जा रही है। सब अपने–अपने काम में लगे रहते। एक वही है, तो निकम्मा बैठे–बैठे टुकड़े तोड़ता रहता है।

बहनें बड़ी हो गयी हैं। माँ के बालों में सफेदी बढ़ती जा रही है। पिता के चेहरे पर झुर्रियाँ बढ़ती जा रही हैं। भरी जवानी में वह नकारा है और बूढ़ा पिता काम में खटता रहता है और अजय बस दिन भर अपनी डिग्री को कोसता है। यह कमबख्त नहीं होती तो वह आराम से कहीं मजदूरी कर लेता। यूँ जीवन में अँधेरा तो नहीं होता। अब तो उम्मीद की एक भी किरण नहीं दिखाई देती। जीवन की घुटन से वह घबरा गया था। घर में नैना के ब्याह की चिंता होने लगी है। आठ दिन पहले से नैना ने भी माँ के साथ दो घरों में काम पर जाना शुरू कर दिया था। तबसे अजय को लग रहा था, जैसे किसी ने उसे भरे बाजार गाल पर तमाचा मार दिया है। बस उसी दिन से उसे घर में रहना दुश्वार लगने लगा। अपना काम तुच्छ लगता। घरवालों पर बोझ लगता। बहन को बड़े भाई का बोझ उठाना पड़े, इससे बढ़कर शर्म की बात और क्या होगी। वह यह अपमान और अपनी अकर्मण्यता सह नहीं पाया।

अब घर में उसे बहन की कमाई पर टुकड़े खाने पड़ते। उनकी दया पर जीना होगा। किसी का ताना न मारना, कुछ न कहना और तोड़ देता उसे।

और कल की रात जेब में थोड़े–से रुपये लेकर वह निकल आया था, न जाने कहाँ के लिए। टिकट खरीदकर जो पहली ट्रेन दिखी, वह उसी में बैठ गया। कुछ नहीं सोचा उसने, बस निकल गया। सहारा नहीं बन सकता तो बोझा भी तो न बने उनपर। बस कई दिनों से यही सोच दिमाग में घर कर बैठी थी। चारो तरफ सिवाय अँधेरों के कुछ नजर नही आता था।

उसका दिमाग फटने लगा। उसने विचारों को झटकने के लिए इधर–उधर देखना शुरू किया। बगल में बैठी लड़कियों में से बड़ी लड़की माँ की गोद में सो रही थी। छोटीवाली पिता की गोद में बैठी खेल रही थी। अजय को फिर नैना–सोना की याद आ गई और उसका मन भर आया। वह वहाँ से ध्यान हटाकर सामने देखने लगा।

वृद्ध दम्पति बहुत थके हुए, निराश, हारे हुए दीख रहे थे। जीवन की कोई उमंग नहीं, आँखें निःस्पृह, देह जैसे निस्पंदन। कृशकाय देह, एक यतीम लाचारी सर से पाँव तक। मरे नहीं हैं, इसलिए साँसों की गति चल रही है। जीवन की दयनीयता की साक्षात् प्रतिमूर्ति। पता नहीं सच में अथवा अजय को अपनी मनःस्थिति के कारण लग रहा था। उसे उन वृद्ध दम्पति में अपने माँ–बाबू दिखने लगे। उसके माथे पर पसीना छलक आया। उसके न रहने पर

वे भी ऐसे ही करुण, एकाकी, असहाय हो जाएँगे।

अजय ने उधर से भी दृष्टि घुमा ली। वह खिड़की के पास बैठे लड़के को देखने लगा। लड़का खिड़की पर हथेली रखकर बार–बार मुट्ठी बंद करता, मानो कुछ पकड़ रहा हो, फिर कौतूहल से मुट्ठी की झिरियाँ से झाँकता और फिर हथेली खोलकर मुस्कुरा देता। फिर बड़े जतन से उंगलियाँ पास लाकर मुट्ठी बंद करता। अजय देर तक उसका खेल देखता रहा। उसे समझ नहीं आया वह लड़का क्या पकड़ रहा था–हवा को या कुछ और।

कुछ देर बाद अजय से रहा नहीं गया। उसने लड़के से पूछ ही लिया–

''तुम यह क्या पकड़ रहे हो बच्चे?''

'मैं धूप को पकड़ रहा हूँ।''–लड़का बोला।

तब अजय का ध्यान गया। सूरज ट्रेन की खिड़की की ऊँचाई तक पहुँच गया था और खिड़की पर उसकी किरणें झिलमिला रही थी।

''धूप भी भला कोई पकड़ सकता है?'' अजय ने दार्शनिकों की तरह कहा।

''मैं पकड़ सकता हूँ।'' लड़का बड़े आत्मविश्वास से बोला–''यह देखो, मेरी मुट्ठी में धूप है।'' कहते हुए लड़के ने अपनी मुट्ठी खोल दी और हथेली फैला दी। उसकी हथेली पर किरणें झिलमिला रही थीं।

''यह तो तुमने हथेली खोली इसलिए। बंद मुट्ठी में कोई धूप को पकड़ थोड़े ही सकता है। बंद मुट्ठी में तो सदा अँधेरा ही रहता है बच्चे।'' अजय ने बड़े गंभीरता से उसे जीवन का दर्शन समझाना चाहा।

''बंद मुट्ठी में वही होता है, जो हम सोचते हैं। जो हमारे दिमाग में होता है। मैं सोचता हूँ कि मेरी मुट्ठी में धूप है तो मेरे लिए है। आप अँधेरा सोचते हो, इसलिए आपको मुट्ठी में अँधेरा लगता है।'' लड़के ने अकड़कर कहा। उसने अजय को ऐसे देखा, जैसे वह कितना नादान, नासमझ है, जिसे मुट्ठी के भीतर का इतना सा सच भी नहीं पता।

''मैं धूप सोचता हूँ इसलिए मेरी मुट्ठी में धूप ही भरी हुई है। मैं अँधेरा नहीं सोचता और क्यों सोचूँ, जब मैं धूप सोच सकता हूँ तो।'' लड़का बहुत आत्मविश्वास से बोला और फिर अजय पर से ध्यान हटाकर अपने खेल में मग्न हो गया।

लड़के की बात सुनकर पहली बार वृद्ध दम्पति मुस्कुराए। उनकी झुर्रियाँ में कहीं जीवन की सलवटें दिखाई देने लगीं। आँखों में जीवन की हल्की–सी चमक कौंध गयी। देह में स्पंदन दौड़ गया और उन्होंने लड़के के सर पर हाथ फेर दिया।

पिता की गोद में बैठी छोटी लड़की अचानक किसी पर किलकारी मारकर हँसने लगी। भाई ने खुश होकर अपनी बहन की की ओर देखा और हाथ बढ़कर उसे पिता की गोद से लेकर अपनी गोद में बिठा लिया। अब वह अपनी बहन को भी धूप भरने का खेल सिखाने लगा। वह हथेली खोलता तो बहन भी खोलती, फिर बंद करता तो बहन भी मुट्ठी बंद कर लेती, फिर दोनों हथेली फैलाकर उसपर झिलमिलाती धूप देखकर खुश होते और किलकारी मारकर हँस देते।

वृद्ध दम्पति के चेहरों पर अब मुस्कान चौड़ी होती जा रही थी। आँखों में ममत्व झलकने लगा। बच्चों के माता–पिता विभोर होकर देख रहे थे। ऊपर की सीट पर सोया आदमी जागकर कौतूहल से दोनों का खेल देख रहा था। बगलवाली दोनों सीट पर बैठे यात्री भी गंभीरता का चोला उतार मुस्कुरा रहे थे।

अजय देख रहा था कि किस तरह एक भाई मन प्राण से अपनी बहन की हथेली में धूप भरने की चेष्टा कर रहा है और एक भाई वह है, जो अपनी मुट्ठी का अँधेरा अपनी बहनों की हथेलियों में भरकर भाग आया। भाग तो आया, लेकिन भागकर जाएगा कहाँ। अपनी अकर्मण्यता, असफलता तो साथ ही ले आया। जिससे सारी तकलीफें थी, जो सभी मुसीबतों की जड़ है, वह झूठा अहम तो अब भी सर पर बैठा हुआ है। अभी भी तो दो जन रोटी के लिए कहीं किसी बंगले पर गाड़ी ही धोनी होगी या सड़क पर मजदूरी करनी होगी।

तो अपने घर रहते ही क्या बुरा था?अजय की सोच पहली बार परिवार की ओर गयी। माँ की हालत कितनी खराब होगी। बाबू कस्बे भर में ढूँढ रहे होंगे उसे। सोना–नैना दीवार से टिकी दुख में स्तब्ध शून्य में ताक रही होगी।

क्या वह इतना नकारा है कि थोड़ा श्रम करके दो सूखी रोटी नहीं कमा सकता। किस बात का इतना अहम है उसे, उस डिग्री का जिसका कोई मोल नहीं, जो उसे दो जून की रोटी नहीं खिला सकी। उसके लिए वह उस बाबू को छोड़कर आ गया, जो जन्म से उसे रोटी खिला रहे हैं। अजय की आँखों से अब आँसू की मोटी बूँदें गिर पड़ीं।

सोना पास वाली कॉलोनी के एक पार्लर में काम करने जाती है। साफ–सफाई का काम करते हुए धीरे–धीरे उसने धागा चलाना और मेकअप, मेंहदी के गुर भी सीख लिया। अब दो पैसा वह भी ले आती है घर। लेकिन वो...

लड़का क्या सच ही कह रहा है कि मेरी सोच में ही अँधेरा है। क्या मेरी हथेली में एक भी किरण नहीं उजाले की।

बहुत सालों का जमा अवसाद और कुंठा पिघलने लगी। सीने में कुछ अटक गया। रात घर छोड़ने का जो उन्माद अचानक दिमाग पर हावी हो गया था, वो उतरने लगा। घरवालों की बेतरह याद आने लगी। एक छोटा–सा लड़का आठ लोगों की चेहरे पर मुस्कुराहट ला सकता है, अपनी मुट्ठी में धूप भरने का विश्वास रखता है और वो...

खुद पर अचानक शर्म आने लगी, मन ग्लानि से भर गया। लड़का अभी भी अपनी बहन की हथेली में धूप भर रहा था। धूप की चमक अब उसके चेहरे से होती हुई पूरे कंपार्टमेंट में फैल गयी थी। सबके चेहरों पर छा गई थी।

अजय ने धीरे से अपनी हथेली भी खिड़की पर रख दी। धीरे से मुट्ठी बंद करके फिर खोल दी। हथेली पर धूप झिलमिला रही थी। करने को बहुत–से काम हैं। आज का छोटा काम कल बड़ा भी हो जाएगा। छोटा काम पैसा न सही, पर अनुभव तो देगा। बाहर ही जाना हो तो घरवालों से कहकर भी जाया जा सकता है।

ट्रेन की गति धीमी होती हुई आखिर में एक हिचकोला खाते हुए थम गई। अजय उठ खड़ा हुआ।

''आपका स्टेशन आ गया क्या?''–लड़के ने पूछा

''नहीं, ये मेरा स्टेशन नहीं है, लेकिन मैं समझ गया कि मेरी मुट्ठी में भी धूप है। अजय ने मुस्कुराते हुए कहा–'अब मैं भी अपनी बहन की हथेली पर धूप रखने जा रहा हूँ।''

''देखा, पता चल गया न आखिर कि मुट्ठी में धूप हमेशा होती है। अँधेरा तो दिमाग में होता है।'' लड़का अपनी समझ पर बड़े गर्व और प्रौढ़ता के साथ बोला।

''हाँ, दोस्त! शुक्रिया।''–अजय ने कहा

लड़का फिर अपने खेल में मगन हो गया। कंपार्टमेंट के सभी यात्री मुस्कुरा रहे थे। अजय स्टेशन पर उतर गया। आते हुए उसे मालूम नहीं था कि वह कहाँ जा रहा है, लेकिन अब उसे अपना गन्तव्य पता था। टिकट खिड़की से उसने अपने कस्बे का टिकट लिया और ट्रेन का समय पूछकर इंतजार करते हुए बेंच पर बैठ गया। उसने अपनी हथेली फैलाई, धूप आकर उसपर बैठ गयी। अजय ने उस धूप को मुट्ठी में भर लिया।

सुसंभाव्य
प्रकाशन

कार्यालय
भवानी कॉम्पलेक्स, पटल बाबू रोड
गुरुद्वारा गली के सामने, भागलपुर (बिहार)
Mob.: 9931240303